शिक्षण को अधिगम प्रक्रिया कैसे बनाएँ ?

-543
371.146
UTT-S

राज्य शैक्षिक अनुसंधान और
प्रशिक्षण परिषद, उत्तर प्रदेश

शिक्षण को अधिगम प्रक्रिया कैसे बनायें

NIEPA DC
D04273

राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
उत्तर प्रदेश, लखनऊ

शिक्षक संदर्शिका
शिक्षण को अधिगम
प्रक्रिया कैसे बनायें

- 543
371.146
UTT-S

प्रकाशक :
निदेशक, राज्य शैक्षिक अनुसंधान और
प्रशिक्षण परिषद् उत्तर प्रदेश
लखनऊ ।

Sub. National Systems Unit,
National Institute of Educational
Planning and Aministration
17-B, Sri Aurbindo Marg, New Delhi-110016
DOC. No. D-4273
Date 6/6/91

© उत्तर प्रदेश सरकार

प्रथम संस्करण : अप्रैल, 1988

मुद्रक : ज्ञान, सिक्योरिटी प्रेस प्रा० (लि०)
वी० एन० रोड, चौलखी लखनऊ ।

आमुख

आज "शिक्षा" जन-जन का प्राप्तव्य है। इससे कक्षा में छात्रों की संख्या बढ़ी है। इस संख्यावृद्धि के फलस्वरूप कक्षा के प्रत्येक छात्र पर व्यक्तिगत ध्यान देने में शिक्षक कठिनाई का अनुभव कर रहा है। वह यह देख नहीं पा रहा है कि उसका शिक्षण अधिगम बन भी रहा है अथवा नहीं। दूसरे शब्दों में वह शिक्षण तो कर रहा है पर उसके छात्र कितना सीख रहे हैं, इसे समझने में वह समर्थ नहीं हो पा रहा है। छात्र और शिक्षक के जीवन में वह क्षण अत्यन्त अद्‌भुत और आनंदमय होता है जब शिक्षक की बात को छात्र सीख लेता है।

शिक्षक वस्तुतः छात्रों के लिए एक उत्प्रेरक अभिकरण (Catalytic Agent) है। शिक्षक का कार्य धाराप्रवाह बोलना और दार्शनिक की भांति किसी गूढ़ रहस्य की मीमांसा करना नहीं है। उसका काम तो पाठ को इस प्रकार रोचक और जीवन्त ढंग से प्रस्तुत करने में है कि छात्र पूरे समय चंचलता मिश्रित जिज्ञासा और कौतूहल के तहत् पाठ में सहभागी बनकर स्वयं सीखने और करने का आनंद ले सकें। शिक्षक को तो छात्र के सहयोगी, मित्र और पथप्रदर्शक के रूप में अपनी भूमिका अदा करनी है। उसे छात्रों की सक्रिय सहभागिता से अधिक संख्या के अभिशाप को वरदान में बदलना है। शिक्षक के मन में सदैव इस बात का प्रश्न बना रहना चाहिए कि वह किस प्रकार छात्रों को एक दूसरे से सीखने के लिए प्रेरित करे। उसको छात्रों को सही रूप से जीना सिखाना है। उसे ऐसा प्रयास करना है कि छात्र अगले दिन के कक्षा शिक्षण के आनंद की उत्सुकता और अधीरता पूर्वक प्रतीक्षा करें।

शिक्षक का कार्य भावी संतति को ऐसा बनाना है, जिसकी निष्ठा पढ़ लिखकर डिग्री प्राप्त करने में न होकर एक अच्छे इन्सान बनने में हो। शिक्षक को उन्हें संस्कारित करना है कि व्यक्ति की बड़ाई उसके व्यवहार और निश्छल जीवन में है, दौलत में नहीं। शिक्षक का कर्तव्य है कि नीति को नियति में बदल कर बालकों की बेहतरी के लिए सदैव जागरूक और प्रयत्नशील रहे।

अब जमाना बदल चुका है, देश अपना है, सरकार अपनी है। युग, असहयोग का नहीं, सहयोग का है। अध्यापक को यह भी ध्यान रखना है कि बच्चों में अन्याय का बोध बड़ों की अपेक्षा अधिक होता है। इसीलिए उसके अपने व्यवहार में कहीं रत्ती भर अन्याय नहीं झलकना चाहिए नहीं तो जिसे छात्र ने

अपना गुरु और ईश्वर समझा है वह धड़ाम से जमीन पर गिरकर टूट जायेगा और साथ ही टूट जायेगी एक उभरती हुई संवेदना की कली। यदि बच्चों को किसी रूप में अन्याय का आभास होता है तो अध्यापक-उन्हें बताएँ कि सुधार की समुचित प्रक्रिया क्या है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में कानून तोड़ना और धन-जन को नुकसान पहुंचाना अन्याय के प्रति आवाज बुलंद करने का सही तरीका नहीं है, इसका ज्ञान और बोध बालकों को हो, यह दायित्व अध्यापक का ही है। छात्र, अध्यापक से बेपनाह मुहब्बत चाहता है। प्यार का यह विश्वास अध्यापक छात्र के दिल में जितनी गहराई से जमा देगा, उसका शिक्षण उतना ही अधिगम का प्रतिरूप हो सकेगा।

छात्रों की सहभागिता को बढ़ाने और शिक्षण को अधिक से अधिक अधिगम में रूपायित करने के लिए यह आवश्यक है कि विद्यालयों में कुछ इससे सम्बन्धित अधिगम् प्रयोग किये जांय। इन कार्ययोजनाओं के आधार पर बच्चे जानें कि सम्पूर्ण अधिगम, स्व अधिगम् है (All learning is self learning)। उनकी स्व अधिगम प्रक्रिया ऐसी हो कि वे जरा सा इशारा पाते ही अरबी घोड़े की तरह गति में आ जायें। इन कार्य योजनाओं का उद्देश्य शिक्षण अधिगम को एक सतत् प्रक्रिया बनाने की हो। यदि हम शिक्षण अधिगम को इस तरह बदल सकें तो निश्चय ही विद्यालय शिक्षा मंदिर हो सकेंगे और उन्हें हम मानव निर्माण की कार्यशाला के रूप में अंगीकार कर सकेंगे। इस संदर्शिका में कुछ इसी तरह की कार्य योजनाएं प्रतिदर्श के रूप में संलग्न हैं।

शिक्षण को अधिगम कैसे बनाएं? इस विषय पर प्रस्तुत संदर्शिका की रचना के लिए मै निदेशक, राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, उत्तर प्रदेश का आभारी हूं।

आशा है, शिक्षक समुदाय इस संदर्शिका से लाभ उठाएगा।

(जगदीश चन्द्र पन्त)
प्रमुख सचिव, शिक्षा उ० प्र० शासन

लखनऊ
दिनांक 10 मार्च 1988

दो शब्द

सामान्यतया शिक्षा से जुड़े लोग यह सोचते होंगे कि क्या शिक्षण अधिगम एक संश्लिष्ट प्रक्रिया नहीं है ? अब तक के सारे प्रयास क्या शिक्षण को अधिगम बनाने के लिए नहीं हुए हैं ? इस प्रकार की सोच स्वाभाविक है और काफी अंश तक इसमें बल भी है। पर यहां केवल एक बात कहनी है कि यदि शिक्षण का उद्देश्य कक्षा में व्याख्यान देना या छात्रों को सूचना देना अथवा निश्चित पाठ्यचर्या की पूर्ति मान लिया गया तो क्या शिक्षण अधिगम बन सकेगा। निश्चय ही उत्तर नकारात्मक होगा, अस्तु शिक्षण को अधिगम के रूप में बदल लेना हमारे लिए चुनौती है और एक समस्या भी। ज्ञान विस्फोट, जनसंख्या विस्फोट और आकांक्षा विस्फोट के कारण यह समस्या और घनीभूत हो गई है। अतएव आवश्यकता है, अध्यापक के कार्यभार में कोई वृद्धि न करते हुए उपलब्ध संसाधनों और वर्तमान परिस्थितियों से सामंजस्य रखते हुए इस प्रकार की शिक्षण अधिगम कार्य योजनाओं को मूर्तरूप देने की, जिससे यह प्रक्रिया जीवत हो सके और छात्र स्व अधिगम के लिए अभिप्रेरित हो सकें, तो निश्चय ही हमारी (अध्यापक की) सार्थकता सिद्ध हो सकेगी।

उपर्युक्त उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत संदर्शिका अध्यापकों को समर्पित है। संदर्शिका चार अध्यायों—भूमिका, शैक्षिक और शैक्षणिक उद्देश्य, अधिगम अनुभवों का संयोजन और मूल्यांकन में विभक्त है। परिशिष्ट में 7 कार्य योजनाओं का प्रारूप प्रतिदर्श भी दिया गया है। संदर्शिका में शिक्षण अधिगम के विषय में जो सामग्री दी गई है, उसका उद्देश्य अध्यापक को मात्र शिक्षण अधिगम के उन तत्वों का पुनः स्मरण दिलाना है जिनसे वह पूर्व परिचित है। कार्य योजनायें मात्र प्रतिदर्श हैं। अध्यापक अन्य कार्य योजनाओं पर विचार कर सकते है तथा स्वयं निश्चित कर सकते हैं। आशय यह है कि वे इस प्रकार की कार्य योजनाओं को विद्यालय में चलाएं जिससे छात्रों में शिक्षण अधिगम के प्रति एक नये दृष्टिकोण का उन्मेष हो, उनमें स्व अधिगम, अध्यवसाय और पारस्परिक सहयोग का विकास हो।

इस विचार के उद्भव का सम्पूर्ण श्रेय प्रमुख सचिव (शिक्षा) श्री जगदीश चन्द्र पन्त को है। उन्होंने केवल विचार ही नहीं दिए वरन् संदर्शिका निर्माण कार्यशाला (दिनांक 25-26 फरवरी 1988, लखनऊ) में स्वयं उपस्थित होकर विचार को मूर्तरूप देने में भी हमारा मार्गदर्शन किया है। मै प्रमुख सचिव

परिशिष्ट : कतिपय कार्य योजनाएँ 25

कार्य योजना सं० 1 शिक्षण-अधिगम में छात्रों की सहभागिता (प्राइमरी स्तर) 26–28

कार्य योजना सं० 2 शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में छात्रों की सहभागिता। 29–31

कार्य योजना सं० 3 कक्षा-शिक्षण में छात्रों की सहभागिता 32–33

कार्य योजना सं० 4 गृह कार्य/लिखित कार्य-संशोधन की व्यवस्था। 34–35

कार्य योजना सं० 5 शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में पुस्तकालय का उपयोग। 36–38

कार्य योजना सं० 6. छात्रों के सहयोग से विद्यालय व्यवस्था का संचालन। 39–42

कार्य योजना सं० 7 कक्षा 10 एवं 12 के छात्रों के सहयोग से लिखित कार्य की जांच करना। 43–44

भूमिका

1.0 शिक्षा का प्रयोजन :

यह निर्विवाद है कि समाज की प्रगति में शिक्षा का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। वस्तुतः शिक्षा हमारे भौतिक और आध्यात्मिक विकास की आधारभूत आवश्यकता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) के अनुसार शिक्षा का प्रमुख प्रयोजन व्यक्ति को सुसंस्कृत बनाना है। शिक्षा हमारी संवेदनशीलता और दृष्टि को प्रखर करती है। इससे समझ और चिंतन में स्वतन्त्रता आती है तथा लोकतन्त्र के लक्ष्यों की प्राप्ति में अग्रसर होने की प्रेरणा प्राप्त होती है। शिक्षा के आधार पर ही अनुसंधान और विकास को सम्बल मिलता है जो राष्ट्रीय आत्मनिर्भरता की आधारशिला है। शिक्षा बालक की अन्तर्निहित क्षमताओं को बहिर्गत करके उसे पूर्ण मानव बनाने का अनुपेम साधन है। इससे प्रमुखतः बालक के व्यक्तित्व का विकास इस प्रकार अपेक्षित है कि वह समाज का सुयोग्य नागरिक बन सके। शिक्षा के द्वारा बालक को नैसर्गिक, अविकसित एवं सुप्त क्षेमताओं और गुणों के विकास के लिए इस प्रकार के उचित परिवेश की व्यवस्था करनी होती है जिससे कि वह प्रेरित हो सके और शैक्षिक अनुभव प्राप्त कर अपने को इस प्रकार ढाल ले कि समाज का एक सुयोग्य नागरिक बन सके।

सारांश रूप में शिक्षा की प्रमुख भूमिका जनशक्ति को पैदा करना है, ऐसी जनशक्ति जो विभिन्न दायित्वों को संभालने में समर्थ हो, देश की संस्कृति का संरक्षण एवं वृद्धि करें, राष्ट्रीय चरित्र से परिपूर्ण हो और विश्व के प्रतियोगी बाजार में आत्म विश्वास के साथ खड़ी हो सके।

1.1 शिक्षण: अर्थ और स्वरूप

शिक्षण बालक, विषय और शिक्षक के बीच का वह संबंध है जो बालक को उसकी उन समस्त शक्तियों के विकास में सहायता देता है, जिससे वह भविष्य में समाज के योग्य और सृजनशील नागरिक के रूप में तैयार हो सके। शिक्षण छात्र के व्यवहार और अनुभव में परिवर्तन लाने की प्रक्रिया है। इसका एकमात्र उद्देश्य

बालक को सिखाना है। वस्तुतः शिक्षण, सीखने के लिए निर्देशन तथा प्रेरक तत्व है। मात्र सूचना प्रदान करना शिक्षण नहीं है। शिक्षण का प्रयोजन बालक को उसके परिवेश के अनुकूल और समायोजन करने में सहायता देना, उसे क्रियाशील रहने का अवसर प्रदान करना, उसे सीखने के लिए अभिप्रेरित करना, तथा उसके संवेगों को प्रशिक्षित करके उसको अपने पूर्ण व्यक्तित्व का विकास करने का अवसर प्रदान करना है जिससे वह अपने जीवन में उन जीवन मूल्यों को धारण कर सके जो उसे सच्चे अर्थों में "मानव" कहलाने का अधिकारी बना सके।

शिक्षण जितना ही जीवन्त, जिज्ञासावर्धक, रोचक, स्वाभाविक, सहभागितापूर्ण तथा छात्रों के मनोनुकूल होगा, छात्र पर उसका उतना ही अधिक और चिरस्थायी प्रभाव पड़ेगा तथा उसका अधिगम उतना ही अधिक पूर्ण एवं सुनिश्चित होगा।

अतः शिक्षण इस प्रकार का हो कि उसमें निम्नलिखित तत्व निश्चित रूप से समाहित हों।

(1) शिक्षण अधिगम, निर्देशन का कौशल उत्पन्न करने वाला हो।
(2) शिक्षण सावधानी पूर्वक, सुनियोजित हो।
(3) शिक्षण उत्तेजनात्मक हो।
(4) शिक्षण सीखने का कारण बनता हो।
(5) शिक्षण निदानात्मक और उपचारात्मक हो।

1.2 अधिगम: अर्थ और स्वरूप

शिक्षण की स्वाभाविक परिणति, छात्र द्वारा अपने पूर्व अनुभव के परिप्रेक्ष्य में नवीन अनुभवों की संप्राप्ति है। छात्र की यह संप्राप्ति तथा उससे उसके जीवन एवं व्यवहार में आने वाला परिवर्तन ही अधिगम है।

शिक्षा के समस्त प्रयास मूलतः शिक्षार्थी के अधिगम अथवा सीखने से संबंधित हैं। सीखने के लिए अनुभव की आवश्यकता होती है अतः विद्यालयों में अनेकानेक महत्वपूर्ण बातों को सीखने के लिए छात्रों को अनुभव प्रदान करने का प्रयास होता है। सीखने के द्वारा छात्रों में अनुभवजन्य बौद्धिक विकास होता है और साथ ही नवीन आदतों का निर्माण होता है जिनसे वह अपने को वातावरण के अनुकूल बनाकर जीवन को सुन्दर ढंग से जीने में सफल होता है। इस प्रकार वातावरण की उत्तेजनाओं के प्रति बालकों की स्वाभाविक प्रतिक्रियाओं में

परिवर्तन एवं परिमार्जन होकर उनके द्वारा समाजसम्मत परिष्कृत प्रतिक्रियाओं को करने लग जाना ही सीखना अथवा अधिगम है। अतः कहा जा सकता है-

(1) अधिगम अनुभव और प्रशिक्षण के माध्यम से स्वाभाविक व्यवहार में संशोधन की प्रक्रिया है।

(2) अधिगम नवीन क्रिया का पुनर्गठन एवं पुष्टीकरण है।

अधिगम प्रक्रिया कई सोपानों में सम्पन्न होती है। महान शिक्षाशास्त्री मिलर तथा डोलार्ड ने इन सोपानों को व्यक्त करते हुए कहा है कि अधिगम या सीखने के लिए व्यक्ति को किसी वस्तु की आवश्यकता का अनुभव होना चाहिए, उसे कुछ देखना भालना चाहिए, उसे कुछ करना चाहिए और अंत में उसे कुछ प्राप्त करना चाहिए। इस प्रकार व्यक्ति जीवन भर सीखता रहता है और सीखने के फलस्वरूप अपने व्यवहार को परिवर्तित और परिष्कृत करता रहता है। संक्षेप में पूरी शिक्षा व्यवस्था का प्रयोजन छात्र को सिखाना ही है।

1.3 शिक्षण-अधिगमः एक समेकित प्रक्रिया

शिक्षण तथा अधिगम के स्वरूप पर दृष्टि डालने से स्पष्ट है कि शिक्षण, अधिगम निर्देशन का पर्याय है। अपने आप में शिक्षण का कोई प्रयोजन नहो है यदि वह अधिगम का कारण नहीं बनता। शिक्षण का विचार मस्तिष्क में आने के साथ ही अधिगम पर दृष्टि जाती है। सच तो यह है कि अपेक्षित अधिगम के उद्देश्य से ही शिक्षण की योजना बनती है। इस प्रकार शिक्षण, अधिगम के निमित्त अभिप्रेरण है। अच्छा शिक्षण वही है जो बालक को अधिक से अधिक अधिगम के लिए अभिप्रेरित कर सके, जिससे छात्र अच्छी तरह सीखें। शिक्षण में जान सम्प्रेषण शिक्षक के निदर्शन द्वारा अथवा छात्र के सम्मुख मूल समस्यात्मक परिस्थितियाँ उत्पन्न करके उन्हें पहचानने, निरीक्षण करने, परीक्षण व प्रयोग करने का अवसर प्रदान कर अनुभव, प्रत्यक्षीकरण, तर्क तथा सहज बुद्धि द्वारा उनका हल खोजने में सहायता देकर किया जा सकता है।

इन दोनों रूपों पर विचार करने से स्पष्ट है कि उत्तम शिक्षण वह है जिसमें छात्र को ज्ञान प्रदान किया जाता है किन्तु उसे कई पदों का स्वयं निर्माण करने का अवसर भी मिलता है। अतः शिक्षण अधिगम एक समेकित प्रक्रिया है जिसमें छात्रों की सृजनशक्ति को उभरने का अवसर मिलता है।

उपर्युक्त के आलोक में समग्र शैक्षिक प्रक्रियों अथवा शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के मुख्यतः तीन तत्व प्रकाश में आते हैं-शैक्षिक और शैक्षणिक उद्देश्य, अधिगम अनुभव और मूल्यांकन। उद्देश्य, अधिगम-अनुभव और मूल्यांकन एक दूसरे से पूर्णतया संबन्धित हैं। उद्देश्य के अनुसार ही अधिगम-अनुभवों का चयन होता है। अधिगम-अनुभवों के आधार पर उद्देश्यों और मूल्यांकन तकनीकों का पुनः परीक्षण होता है। मूल्यांकन के परिणामों के आधार पर उद्देश्यों और अधिगम-अनुभवों पर पुनः विचार होता है और इस प्रकार उनमें संशोधन, परिवर्तन, परिमार्जन तथा परिवर्द्धन के लिए दिशा मिलती है। इनके पारस्परिक संबंध को निम्नलिखित रेखा चित्र की सहायता से समझा जा सकता है:

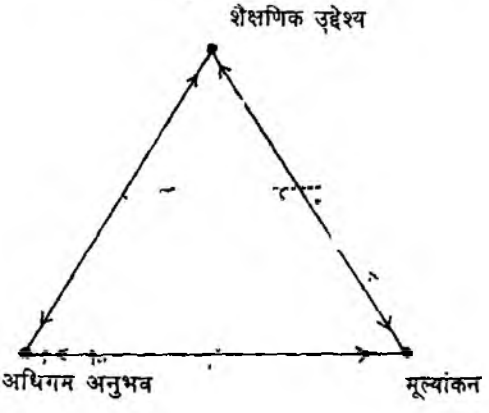

1.4 शिक्षण को अधिगम बनाने की आवश्यकता

"शिक्षण को अधिगम कैसे बनायें" इस वाक्य को पढ़कर आश्चर्य हो रहा है। बहुत सी जिज्ञासायें और प्रश्न मन में उभर रहे हैं। क्या शिक्षण, अधिगम के लिए नहीं होता? क्या शिक्षण का प्रयोजन अधिगम के अलावा कुछ और होता है? क्या शिक्षण को अधिगम बनाने के विषय में इसके पहले प्रयास नहीं हुए हैं? क्या अध्यापक शिक्षण अधिगम को दृष्टि में नहीं रखता? आदि। इन सभी प्रश्नों का उत्तर सकारात्मक ही मिलता है। शिक्षण अधिगम एक संश्लिष्ट प्रक्रिया है। शिक्षण का प्रयोजन अधिगम ही है शिक्षाशास्त्रियों ने अब तक जो प्रयास किये हैं, जिन शास्त्रों की रचना की है, सभी का प्रमुख प्रयोजन बालक को अधिक से

अधिक सिखाना ही रहा है। अध्यापक को अपना शिक्षण हमेशा, इस बात को ध्यान में रखकर ही करना चाहिए कि वह (बालक) अधिक से अधिक सीख सके। पर एक प्रश्न और उठता है : क्या हर शिक्षण, अधिगम को सुनिश्चित करता है? इसका उत्तर उलझा हुआ है। शिक्षण हो रहा है पर आवश्यक नहीं कि बालक सीख भी रहा है। यदि "शिक्षण" को कक्षा में सूचना और व्याख्यान देने के अर्थ में लिया गया तो शिक्षण चलेगा पर अधिगम नहीं होगा। अब प्रश्न उठता है : शिक्षण, अधिगम कब बनता है? निश्चय ही शिक्षण अधिगम तब बनता है जब उसे छात्र की आवश्यकता से संबंधित किया जाता है। आवश्यकता को जब ज्ञान से जोड़ दिया जाता है तभी छात्र में ज्ञान प्राप्ति के लिए तनाव अथवा बेचैनी पैदा होती है। शिक्षण के माध्यम से लक्ष्य की प्राप्ति हो जाने से तनाव शैथिल्य (Need reduction) तो होता ही है, उसे ज्ञान के अगले पदों को जानने की प्रेरणा भी प्राप्त हो जाती है। शिक्षक, शिक्षण की ऐसी गतिविधि अपनाएँ कि छात्र में ज्ञान के प्रति जिज्ञासा या कौतूहल का भाव जगे, वह सीखने के लिए लालायित हो जाय, ऐसी तत्परता को उभारना और छात्र में इसे सदैव बनाये रखना ही शिक्षक का धर्म है। तभी "शिक्षण" "अधिगम" बन सकेगा।

आज व्यापक शिक्षाप्रसार के युग में शिक्षाविदों के समक्ष सबसे बड़ी समस्या है, शिक्षण को अधिगम प्रक्रिया कैसे बनाएं? ज्ञान के त्वरित विकास, छात्र संख्या वृद्धि, प्रत्याशा और आकांक्षा विस्फोट आदि ऐसे कारक हैं जो इस समस्या को विकराल स्वरूप दे रहे हैं। सबसे अच्छा तो यह होता है कि प्रत्येक छात्र के लिए एक अध्यापक हो, एक-एक को पढ़ाएं (Each one Teach one) पर किसी भी राष्ट्र के लिए चाहे वह जितना संसाधनयुक्त क्यों न हो, यह न तो व्यावहारिक ही है, न संभव। आज के इस स्पूतनिक युग में सीखने के लिए बहुत कुछ है, बहुतों को सिखाना है, समय की अपनी सीमा है अतएव शैक्षिक व्यवस्था के लिए सबसे बड़ी चुनौती है कि शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का नियोजन, संयोजन और व्यवस्था कैसे करें कि बालक निर्बाध और प्रभावी ढंग से सीखे।

शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को गतिशील बनाने की दृष्टि से अब तक अनेक प्रयास किए गये हैं और किए जा रहे हैं। शिक्षण अधिगम के अनेकानेक सिद्धान्तों, नियमों, विधियों और प्रक्रियाओं का जन्म हुआ है। यहां किसी नयी विधा को प्रस्तावित करना अभीष्ठ नहीं है। उन्हीं सिद्धांतों के आधार पर

कक्षा-शिक्षण प्रक्रिया को इस प्रकार गतिशील बनाने की आवश्यकता है कि अध्यापक का कार्यभार भी न बढ़े और छात्र इस पूरी प्रक्रिया में बराबर की साझेदारी अदा कर सके। इसी प्रयोजन से कतिपय कार्य योजनाएं परिशिष्ट में दी गई हैं।

शैक्षिक और शिक्षण उद्देश्य

2.0 शैक्षिक और शिक्षण उद्देश्य

प्रत्येक कार्य की पृष्ठभूमि में कोई न कोई उद्देश्य अवश्य होता है। उद्देश्य वह लक्ष्य अथवा अभीष्ट है जिसकी दिशा में कार्य किया जाता है।

शिक्षापद्धति के अन्तर्गत उद्देश्य, अधिगम, अनुभव तथा मूल्यांकन समाहित हैं। ये परस्पर सम्बद्ध तथा एक दूसरे पर आश्रित हैं। अधिगम प्रक्रिया को सफल एवं सुनिश्चित बनाने हेतु शैक्षिक उद्देश्यों का निर्धारण सबसे महत्वपूर्ण पद है।

शिक्षा के अन्तर्गत उद्देश्यों को प्रमुख रूप से दो भागों में बांटा जा सकता

(1) शैक्षिक उद्देश्य (सामान्य उद्देश्य)

(2) शिक्षण उद्देश्य (विशिष्ट उद्देश्य)

शैक्षणिक उद्देश्य की प्रकृति दार्शनिक और इनका स्वरूप अधिक व्यापक होता है। इनकी सम्प्राप्ति-अवधि लम्बी होता है। यह समस्त विद्यालयीय विषयों एवं कार्यकलापों का उत्पाद होता है। ये पाठ्यक्रम की रचना, अनुदेशन के लिए निर्देश तथा मूल्यांकी की प्रविधियों के विशिष्टीकरण में सहायक होते हैं। इनका निर्धारण व्यक्ति, समाज, वातावरण तथा राष्ट्र की आवश्यकताओं के अनुसार किया जाता है और तदनुरूप ही शिक्षा के विभिन्न स्तरों की व्यवस्था की जाती है। इनके निर्धारण में दर्शन, मनोविज्ञान, समाज शास्त्र आदि मार्गदर्शक और आधार बनते हैं।

शिक्षण उद्देश्यों की प्रकृति में मनोवैज्ञानिक आयामों का समावेश अपेक्षाकृत अधिक होता है। वास्तव में शिक्षण-उद्देश्य ही अधिगम-उद्देश्य हैं। इनकी संप्राप्ति की योजना एक कालांश में करने की होती है। इनका महत्व शिक्षण की युक्तियों तथा शिक्षण-रणनीति की रचना में है। इनका प्रत्यक्ष संबंध कक्षा-शिक्षण से तथा अधिगम प्रक्रिया को सरल बनाने से है। इनकी सहायता से ही शैक्षिक उद्देश्यों की संप्राप्ति होती है।

उदाहरणार्थ यदि शैक्षिक उद्देश्य "राष्ट्रीय एकता की भावना का विकास है" तो इसकी प्राप्ति के लिए कई शिक्षण-उद्देश्य यथा राष्ट्रीय एकता की संकल्पना को

स्पष्ट करना, राष्ट्रीय एकता के अर्थ को समझना विकसित करना आदि हो सकते हैं। इसी दृष्टि से इन्हें विशिष्ट उद्देश्य की भी संज्ञा दी जाती है। इनका संबंध छात्रों के व्यवहार में इच्छित परिवर्तन से होता है अर्थात् शिक्षण उद्देश्यों का संबंध प्रत्यक्ष रूप से अधिगम उद्देश्यों से होता है।

2.1 शिक्षण उद्देश्यों का वर्गीकरण

अध्यापक जब भी कोई पाठ पढ़ाता है तो सबसे पहले उसे यह जिज्ञासा करना कि इस पाठ को पढ़ाने से छात्रों के व्यवहार और अनुभव में क्या-क्या परिवर्तन होंगे अर्थात् छात्र कौन-कौन सी नयी बातें सीखेंगे, एक स्वाभाविक जिज्ञासा है। इस दृष्टि से शिक्षण-उद्देश्यों का वर्गीकरण बहुत आवश्यक है। शिक्षा शास्त्री बी० एस० ब्लूम ने शिक्षण-उद्देश्यों का वर्गीकरण निम्नलिखित ढंग से किया है :

शिक्षण उद्देश्य

संज्ञानात्मक पक्ष (Cognitive Domain)	भावात्मक पक्ष (Affective Domain)	क्रियात्मक या मनोगत्यात्मक पक्ष (Conative or Psychomotor Domain)
संबंधित अवयव	संबंधित अवयव	संबंधित पक्ष के वर्ग
(1) जानकारी	(1) अभिवृत्ति	(1) शारीरिक क्रियाओं का विकास
(2) बोध	(2) अभिरुचि	
(3) अनुप्रयोग	(3) अनुभूति	(2) कौशलों का विकास
(4) विश्लेषण	(4) मूल्य एवं प्रशंसा आदि।	
(5) संश्लेषण		
(6) मूल्यांकन		

अधिगम उद्देश्य को व्यावहारिक रूप में लिखना बहुत महत्वपूर्ण है। इससे अधिगम की क्रियायें सुस्पष्ट हो जाती हैं। शिक्षण-क्रियाएं सीमित तथा सुनिश्चित

हो जाती हैं तथा अधिगम के अनुभवों की विशेषताओं का निर्धारण और मापन किया जा सकता है। परिणामस्वरूप शिक्षण-रणनीति के निर्धारण में सुगमता हो जाती है।

2.2 संज्ञानात्मक, भावात्मक, और मनोगत्यात्मक पक्षों की पारस्परिक संबद्धता

शिक्षक के लिए शिक्षण के उद्देश्यों के विभिन्न पक्षों का संक्षिप्त ज्ञान अधिगम प्रक्रिया को प्रभावी बनाने के लिए आवश्यक है :

(1) संज्ञानात्मक पक्ष:

संज्ञानात्मक पक्ष के अन्तर्गत उन योग्यताओं को सम्मिलित करते हैं जो ज्ञान के पुनः स्मरण, पहचान, तथा उच्चतर बौद्धिक योग्यताओं एवं कौशलों के विकास से सम्बंधित हैं। संज्ञानात्मक पक्ष के उद्देश्यों को निम्नलिखित स्तरों में विभाजित किया गया है :—

(1) जानकारी	तथ्यात्मक तथा सूचनात्मक ज्ञान।
(2) समझ अथवा बोध	तथ्यों को व्यक्त करने, व्याख्या करने तथा उनसे निष्कर्षों एवं निहितार्थों को समझ सकने की योग्यता।
(3) अनुप्रयोग	अर्जित ज्ञान का नवीन तथा विशिष्ट परिस्थितियों में प्रयोग करने की योग्यता।
(4) विश्लेषण	जटिल तथ्य को उसके विभिन्न अवयवों में विभक्त करके उनके पारस्परिक संबंधों को स्पष्ट करने की योग्यता।
(5) संश्लेषण	विभिन्न तथ्यों को नवीन तथ्य के रूप में प्रस्तुत करने की योग्यता।
(6) मूल्यांकन	तथ्यों को अन्य तथ्यों से तुलना करके सापेक्षिक मूल्य एवं महत्व के निर्णय की योग्यता।

(2) भावात्मक या संवेदनात्मक पक्ष:

इसके अन्तर्गत छात्र की रुचियों, मान्यताओं, अभिवृतियों, रसानुभूतियों, आदतों, चारित्रिक गुणों आदि का समावेश होता है।

(3) मनोगत्यात्मक या मनःकायिक पक्ष:

इसके अन्तर्गत मनःकायिक कौशल सम्बन्धी क्रियात्मक तथा प्रयोगात्मक योग्यता का समावेश होता है। इसमें छात्र शारीरिक कौशल, पदार्थों तथा वस्तुओं की जोड़-तोड़ अथवा ऐसी क्रियायें करता है जिनमें मनःकायिक समन्वय की आवश्यकता पड़ती है।

तीनों पक्षों की पारस्परिक सम्बद्धता:

उपर्युक्त तीनों पक्षों में वर्गीकरण का अर्थ यह नहीं है कि किसी एक क्षेत्र के उद्देश्य, दूसरे क्षेत्रों के उद्देश्यों से सर्वथा असम्बद्ध है। किसी एक क्षेत्र में योग्यता के अर्जन का प्रभाव अन्य क्षेत्रों में योग्यता के अर्जन में पड़ सकता है। उदाहरण के लिए संज्ञानात्मक क्षेत्र में अनुप्रयोग की योग्यता यदि छात्र में विकसित हो गयी तो भावात्मक क्षेत्र में इसका प्रभाव रसानुभूति के विकास पर पड़ेगा। जैसे किसी तथ्य में छात्र की रसानुभूति विकसित हो गयी तो उसमें अनुप्रयोग की योग्यता के विकास में सहायता मिलेगी। इसी प्रकार सकारात्मक अभिवृत्ति (भावानात्मक क्षेत्र), विषय वस्तु के श्रेष्ठतर बोध (संज्ञानात्मक क्षेत्र) में सहायक हो सकती है। हस्तकौशल का विकास (मनःकायिक पक्ष), वैज्ञानिक दृष्टिकोण (संवेदनात्मक पक्ष) तथा अभिवर्दित बोध (संज्ञानात्मक क्षेत्र) की वृद्धि का कारण हो सकता है। इस प्रकार तीनों पक्षों में पारस्परिक सम्बद्धता है।

2.3 पाठ के शिक्षण में उद्देश्यों का निर्धारण

कक्षा में किसी पाठ के शिक्षण द्वारा अपेक्षित अधिगम अथवा सीख को सुनिश्चित करने हेतु उसके विशिष्ट उद्देश्यों का निर्धारण करके उनकी पूर्ण जानकारी प्राप्त करना शिक्षक के लिए अति आवश्यक है। शिक्षण में उद्देश्यों के निर्धारण से कार्य सीमित एवं विशिष्ट हो जाता है। शिक्षक तथा छात्रों के कक्षागत व्यवहार निश्चित हो जाते हैं। शिक्षक, उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए क्या और कैसे की योजना बनाकर , अपनी व छात्रों की क्रियाओं का चयन करके

पाठ्यवस्तु को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करने में समर्थ हो जाता है इससे उद्देश्य मूर्त-रूप से साकार हो जाते हैं और शिक्षण अधिगम प्रक्रिया अपने सही अर्थ में गतिमान हो जाती है। जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, कक्षा शिक्षण में शिक्षक जब भी कोई पाठ पढ़ाता है तो सबसे पहले उसके सामने यह प्रश्न उठना चाहिए कि इस पाठ को पढ़ाने से छात्रों के व्यवहार तथा अनुभव में क्या क्या परिवर्तन होंगे अर्थात् छात्र कौन-कौन सी नयी बातें सीख सकेंगे, फिर तदनुरूप सीखने के लिए विशेष शैक्षिक परिस्थितियाँ प्रदान करनी होंगी क्योंकि जब छात्र विशेष परिस्थितियों में रहता है तो वह समस्या को सुलझाने का प्रयत्न करता है। इसी प्रयत्न के फलस्वरूप वह सीखता है। जिस प्रक्रिया के फलस्वरूप वह सीखता है, वही प्रक्रिया अधिगम अनुभव कहलाती है। वस्तुतः अधिगम अनुभव शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करने का साधन है। उद्देश्य, अधिगम अनुभव तथा मूल्यांकन एक दूसरे से पूर्णतया संबंधित हैं। उद्देश्य के अनुसार ही अधिगम अनुभवों का चयन होता है। अधिगम अनुभवों के आधार पर उद्देश्यों तथा "मूल्यांकन"तकनीकों का पुनः परीक्षण होता है जिससे उनमें संशोधन, परिवर्तन, परिमार्जन तथा परिवर्द्धन के लिए दिशा मिलती है।

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि किसी पाठ के शिक्षण में उद्देश्यों का स्पष्ट निर्धारण अधिगम अनुभवों की प्राप्ति हेतु अत्यन्त आवश्यक है।

व्यावहारिक दृष्टि से संज्ञानात्मक पक्ष के अन्तर्गत जानकारी, बोध और अनुप्रयोग को लिया जाता है। अनुप्रयोग के तहत् अन्य स्तरों, विश्लेषण-संश्लेषण और मूल्यांकन को समाहित भी कर लिया है। इस प्रकार किसी पाठ को पढ़ाने के पहले अध्यापक को विचार कर लेना है कि उस पाठ के माध्यम से वह संज्ञानात्मक, भावात्मक और मनोदैहिक कौशल के अन्तर्गत बालकों के व्यवहार में किन-किन परिवर्तनों की अपेक्षा कर रहा है। इन उद्देश्यों की सम्प्राप्ति अध्यापक को छात्रों के व्यवहारगत पदों में करना अभीष्ट है। यह हो सकता है कि किसी पाठ में संज्ञानात्मक पक्ष अधिक सबल हो, उसमें कौशल पर भार कम होगा। जैसे कक्षा 9 के छात्र को "भारतीय साहित्य की विशेषताएं" प्रकरण पढ़ाने में छात्र से अपेक्षा है कि संज्ञानात्मक पक्ष के अन्तर्गत भारतीय साहित्य की विशेषताओं को जान सकेगा। उसमें उसको बोध हो सकेगा और भारतीय साहित्य की मूल विशेषताओं के ज्ञान के आधार पर किसी भी साहित्य को विश्लेषित, संश्लेषित और उसका मूल्यांकन कर सकेगा। भावात्मक पक्ष के अन्तर्गत उन विशेषताओं के आधार पर उसकी अभिवृत्तियों, रुचियों और सौंदर्यबोध की प्रवृत्तियों में

सकारात्मक परिवर्तन होंगे। मौनवाचन विभिन्न शैलियों में लेखन और अभिव्यक्ति, दक्षता के विकास के रूप में लिया जा सकता है।

सारांश में अध्यापक को इस बात का ध्यान रखना है कि किसी पाठ को पढ़ाने में छात्र के संज्ञान, जानकारी और अन्य मानसिक योग्यता को तो विकसित करना ही है : इसके साथ और उतना ही महत्वपूर्ण उसके व्यवहार पक्ष (भावात्मक पक्ष) को भी समाजसम्मत बनाना है, साथ ही उसमें मनोशारीरिक दक्षता भी विकसित हो। "राणाप्रताप" का पाठ पढ़ाने में जहाँ राणाप्रताप के विषय में ज्ञान देना है वहीं छात्र में राणाप्रताप की वीरता, त्याग, देशप्रेम आदि गुणों को भी भरना है। इस प्रकार पाठ को पढ़ाने के पहले उद्देश्यों का निर्धारण शिक्षण को अधिगम में परिवर्तन करने का सशक्त सोपान है।

अधिगम अनुभवों का संयोजन

जैसा कि ऊपर व्यक्त किया गया है, निहित शैक्षिक उद्देश्यों की सम्प्राप्ति के लिए विद्यार्थी को अधिगम अनुभव प्रदान करना आवश्यक है। जब तक ये अनुभव प्रदान नहीं किये जायेंगे, छात्र को सीखने का अवसर नहीं मिल पाएगा। अधिगम अनुभवों के अन्तर्गत पूरी शैक्षिक व्यवस्था-विद्यालय, पाठ्यक्रम, पाठ्य-पुस्तकें, शिक्षक, शिक्षणविधि आदि सभी तत्व समाहित हैं। यहाँ कतिपय प्रमुख तत्वों पर विचार करना आवश्यक है।

3.0 पाठ्यक्रम

सम्पूर्ण शैक्षिक क्षेत्र में पाठ्यक्रम का मुख्य स्थान है। शिक्षा की प्रक्रिया में शिक्षक, छात्र तथा पाठ्यक्रम तीन प्रमुख तत्व होते हैं। अध्यापक तथा छात्र दोनों ही शिक्षा के महानतम् उद्देश्यों की प्राप्ति पाठ्यक्रम के अभाव में नहीं कर सकते हैं। पाठ्यक्रम द्वारा ही अध्यापक को ज्ञात रहता है कि उसे छात्र को क्या पढ़ाना है और छात्रों को ज्ञात रहता है कि उन्हें क्या पढ़ना है।

पाठ्यक्रम वस्तुतः विद्यालय की आत्मा का प्रतिनिधित्व करता है। यही वह माध्यम है जो बालक और शिक्षक दोनों का आधार प्रस्तुत करता है। यह उनकी क्रियाओं की सीमा भी निश्चित करता है, जिससे शिक्षा की समस्त योजना निश्चित उद्देश्यों के अनुसार संचालित होती रहे। पाठ्यक्रम में व्यापक रूप से वे समस्त नियोजित अधिगम अनुभव सम्मिलित होते हैं जिनको किसी एक सामाजिक संरचना में शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए छात्रों द्वारा अर्जित किया जाता है। अतः पाठ्यक्रम की संकल्पना के अनुसार पाठ्यक्रम शिक्षा का आवश्यक साधन है, यह वह माध्यम है जिसके द्वारा मानव को शिक्षित एवं मानवीय गुणों से संयुक्त किया जा सकता है। पाठ्यक्रम में मात्र विषयवस्तु का ही उल्लेख नहीं होता वरन् निर्धारित किए हुए सम्पूर्ण अधिगम अनुभव, अधिगम क्रियायें, शिक्षण सामग्री, शिक्षण सोपान तथा मूल्यांकन प्रक्रियायें भी सम्मिलित होती हैं, जिनके द्वारा छात्रों में मानवीय गुणों का समन्वित विकास होता है।

कनिंघम ने पाठ्यक्रम के अर्थ एवं महत्व को स्पष्ट करते हुए कहा है कि "पाठ्यक्रम कलाकार (अध्यापक) के हाथ में वह साधन है जिससे वह अपने पदार्थ (शिष्य) को अपने आदर्श (उद्देश्य) के अनुसार अपनी चित्रशाला (स्कूल) में चित्रित कर सके।"

उपर्युक्त कारणों से ही शिक्षा व्यवस्था में पाठ्यक्रम की ही सबसे महत्वपूर्ण केन्द्र बिन्दु स्वीकार किया गया है। इसी दृष्टि से स्वतंत्रता के पश्चात् हमारे देश में पाठ्यक्रम निर्धारण में अनेक परिवर्तन किये गये। लोकतांत्रिक मूल्यों पर आधारित नवीन समाज की संरचना के लिए विभिन्न शिक्षा आयोगों ने पाठ्यक्रम परिवर्तन हेतु महत्वपूर्ण सुझाव दिए। वैयक्तिक, सामाजिक और राष्ट्रीय आकांक्षाओं और आवश्यकताओं की सम्पूर्ति के लिए सबसे क्रान्तिकारी परिवर्तन का सुझाव 1966 में कोठारी कमीशन द्वारा प्रस्तुत किया गया कि सामाजिक प्रगति और राष्ट्रीय सुदृढ़ता के लिए विद्यालयीय पाठ्यक्रमों में ऐसी विषय-सामग्री का चयन किया जाय जिससे उत्पादन में वृद्धि, सामाजिक और राष्ट्रीय एकता का विकास, लोकतांत्रिक मूल्यों की प्राप्ति, देश का आधुनिकीकरण तथा नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की प्राप्ति संभव हो सके।

सन् 1975 में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद ने पाठ्यक्रम संबन्धी निम्नलिखित मूल सिद्धान्तों की स्थापना की।

(क) पाठ्यक्रम देश के विकास से संबन्धित होना चाहिए।

(ख) किसी भी विषय का पृथक अस्तित्व संभव न होने के कारण भिन्न-भिन्न विषयों का पारस्परिक सम्बन्ध बनाए रखना चाहिए।

(ग) पाठ्यक्रम द्वारा बालकों में नवीन ज्ञान के सीखने के साथ ही आवश्यक कौशल और अनुकूलन की योग्यता का भी समावेश होना चाहिए।

(घ) विषय सामग्री जीवन और कर्म से जुड़ी हो।

(ङ) अधिगम अनुभवों का चयन छात्रों की आवश्यकताओं, क्षमताओं और योग्यताओं को ध्यान में रखकर समकालीन, व्यापक, संतुलित और सामाजिक औचित्य से युक्त विषयवस्तु में से किया जाय।

(च) शैक्षिक क्रियायें कर्म संबन्धी हों जिनमें आन्तरिक मूल्यों पर बल दिया जाय। विषय सामग्री रुचिकर, सीखने योग्य एवं सार्थक हो।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में पाठ्यक्रम में राष्ट्रीय स्तर पर परिवर्तन के जो विचार उभर कर सामने आये हैं, उनका सारांश निम्नवत् है :-

(1) पाठ्यक्रम को नित्य नमनीय बनाये रखा जाय तथा व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र की अपेक्षाओं के अनुरूप उसमें निरन्तर परिवर्तन होता रहे।

(2) पाठ्यक्रम व्यवसायपरक हो जिससे व्यक्ति की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके और वह स्वावलम्बी बन सके।

(3) पाठ्यक्रम में व्यापक राष्ट्रीय चेतना प्रतिबिम्बित होनी चाहिए। यथासम्भव

सम्पूर्ण देश में समान पाठ्यक्रम की व्यवस्था होनी चाहिए।

(4) नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों को वैज्ञानिक निष्पत्तियों से समन्वित करके पाठ्यक्रम को व्यापक मानवीय आधार प्रदान किया जाय।

अध्यापक को इस बात पर सदैव ध्यान रखना चाहिए कि पाठ्यक्रम हमारी अपेक्षाओं और आकांक्षाओं का लिखित अभिलेख हैं। वह हमारी शैक्षिक व्यवस्था और विभिन्न शैक्षिक गतिविधियों का पुंजीभूत प्रतिबिंब है। उसमें समाहित प्रत्येक गतिविधि बालक के व्यक्तित्व के विकास और उसके समाजीकरण की प्रक्रिया का आवश्यक तत्व है। उदाहरण के लिए हिन्दी की पुस्तक में 'कबीर' का पाठ रखा गया है तो क्यों रखा गया है, इसे हमें सोचना है, समझना है, और आवश्यकताओं के अनुरूप ही हमें अपनी शिक्षण अभिगम प्रक्रिया की रणनीति निर्धारित करनी है। कबीर को इसलिए रखा गया है कि छात्र "कबीर" के विषय में जानकारी प्राप्त करें, उनकी रचनाओं को पढ़ें, समझें, व्याख्या कर सकें। भाव ग्रहण कर सकें। इसके अतिरिक्त 'कबीर' को इस लिए भी शामिल किया गया है कि छात्र 'कबीर' के सर्वधर्म समभाव के संदेश को ग्रहण कर सकें, आडम्बर और भेदभाव से दूर रहें, सही बात को कहने में निर्भीक बने रहें आदि। अस्तु पाठ्यक्रम में जो भी तत्व रखे गए हैं, उन्हें गहराई से समझना और कक्षा-शिक्षण में उसे अधिगम में बदलना बहुत आवश्यक है।

3.1 शिक्षार्थी

शिक्षण अधिगम का सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटक शिक्षार्थी है। शिक्षण, शिक्षार्थी के ही व्यवहार में परिवर्तन, परिमार्जन एवं परिष्कार के लिए होता है। अतः सफल शिक्षण एवं अधिगम के लिए शिक्षक को अपने विषय से अधिक उस बालक का ज्ञान होना चाहिए जिसे उसे शिक्षा देनी है। बालक की आवश्यकताओं, आनुवंशिक विशेषताओं और प्रवृत्तियों को आधार बनाकर ही बालक के व्यवहार में वांछित परिवर्तन लाया जा सकता है। बालक के विकास की विभिन्न अवस्थाओं एवं उनकी मनोदशाओं के ज्ञान द्वारा उनकी आयु, योग्यता, बुद्धि, आवश्यकता, रुचि-अभिरुचि और अभिवृत्ति के आधार पर किये जाने वाले शिक्षण से ही बालक का सर्वांगीण विकास (शारीरिक, संवेगात्मक, सामाजिक तथा बौद्धिक) होना संभव होता है।

शिक्षक को बालक की वैयक्तिक भिन्नता को ध्यान में रखते हुए उसके विकास और व्यवहार के विभिन्न पक्षों को शिक्षण का आधार बनाना आवश्यक है। अध्यापक को सदैव इस बात को देखना है कि बालक के व्यक्तित्व का समुचित विकास हो, उसका मानसिक स्वास्थ्य ठीक रहे और उसे उसकी आवश्यकता के अनुरूप शैक्षिक, व्यावसायिक और वैयक्तिक निर्देशन प्राप्त होता रहे। वस्तुतः बालक जिज्ञासु होता है। उसकी इस प्रवृत्ति को बनाए रखना और बढ़ाना ही शिक्षक का प्रमुख दायित्व है। सब मिला जुलाकर शिक्षार्थी का समग्र व्यक्तित्व, उसकी आवश्यकतायें और आकांक्षाए अध्यापक को स्पष्ट होनी चाहिए।

यहां पर संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन द्वारा एक विद्यालय के प्रधानाध्यापक को जहां उनका पुत्र शिक्षा प्राप्त कर रहा था, लिखे गये पत्र का संदर्भ देना आवश्यक प्रतीत हो रहा है। इस पत्र में अब्राहम लिंकन ने अध्यापक से अपेक्षा की है कि उनके पुत्र को क्या सिखाएं और अन्त में लिखा है : यह बहुत बड़ी अपेक्षा है, परन्तु सोंचे कि आप क्या कर सकते हैं।.....वह ऐसा प्यारा बच्चा है, मेरा पुत्र। इसके उल्लेख का आशय केवल इतना है कि वह बहुत प्यारा है। उसके विकास में अध्यापक से बहुत अपेक्षा है। उसे अच्छी तरह बालक को जानना है, समझना है, परखना है और तब अध्यापक को सोचना है कि वह उसके समुचित विकास के लिए क्या कर सकता है। अतएव शिक्षार्थी के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, भाषाई आदि विकास के परिप्रेक्ष्य में उसकी मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं के अनुसार शिक्षण-रणनीति का निर्धारण, शिक्षण को अधिगम बनाने के लिए महत्वपूर्ण है।

3.2 शिक्षक

शिक्षा प्रणाली का शिक्षक एक महत्वपूर्ण अंग है। शिक्षक की पहल, शक्ति तथा बुद्धि कौशल से ही किसी कार्यक्रम का कार्यान्वयन हो सकता है। विद्यालयीय गतिविधियों में शिक्षक की भूमिका सूचनाओं के आदान प्रदान करने वाले की ही नहीं, अपितु एक ऐसे व्यक्ति की है जो सीखने की प्रक्रिया को सुगम बनाता है और शिक्षक व विद्यार्थी के सम्मिलित प्रयास को प्रेरित करता है। शिक्षक का मुख्य कार्य छात्र के लिए प्रेरक तत्व बन कर ऐसे परिवेश की व्यवस्था करनी है, जिसमें छात्र शैक्षिक अनुभव प्राप्त कर अपने दैनिक व्यवहार में परिवर्तन ला सके।

किसी भी समाज में शिक्षकों के स्तर से उसकी सांस्कृतिक एवं सामाजिक दृष्टि का पता लगता है। कहा गया है कि कोई भी राष्ट्र अध्यापकों के स्तर से

ऊपर नहीं उठ सकता। अतः सृजनशील शिक्षक ही समाज व राष्ट्र के उन्नायक हैं।

शिक्षक के महत्व के संबन्ध में ब्राउन ने लिखा है कि, "समस्त बातों को ध्यान में रखकर मैं इस परिणाम पर पहुंचा हूं कि अध्यापक शिक्षा का सबसे महत्वपूर्ण अंग होता है। पाठ्यक्रम, विद्यालय, संगठन और पाठ्यसामग्री यद्यपि अध्यापक के महत्वपूर्ण अंग हैं, परन्तु वे सभी तब तक निष्प्राण रहते हैं जब तक कि अध्यापक के सजीव व्यक्तित्व द्वारा उनमें प्राण-प्रतिष्ठा नहीं कर दी जाती।"

शिक्षक देश की संस्कृति का प्रतिनिधि होता है। वह गौरवशाली पद का स्वामी होता है। उसके शिष्य उसके प्रति प्रेम व भक्ति से सदा कृतज्ञ रहते हैं। कहा जाता है कि जब शिक्षक दौड़ता है तो उसके शिष्य चलते हैं, जब वह चलता है तो उसके शिष्य बैठते है और जब वह बैठता है तो उसके शिष्य सो जाते हैं। स्पष्ट है कि शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में शिक्षक की बड़ी अहम् और बहुमुखी भूमिका है। उसे छात्रों के अनुकरणार्थ एक आदर्श आचरण प्रस्तुत करने की आवश्यकता है।

अधिगम को स्वाभाविक बनाने हेतु अध्यापक को एक कुशल संगठनकर्ता होना चाहिए। उसमें लगन, उत्साह, निष्ठा, सूझबूझ, प्रेम तथा सहयोग की भावना प्रत्युत्पन्नगति तथा न्यूनतम साधनों से कार्य चला लेने का गुण होना चाहिए।

शिक्षण को अधिगम प्रक्रिया बनाने के संदर्भ में शिक्षक से अपेक्षाएँ

शिक्षक से प्रमुख अपेक्षाएं निम्नलिखित हैं :

(1) स्वयं के आचरण से छात्रों में अपने प्रति विश्वास उत्पन्न करना।

(2) छात्रों की रुचियों व क्षमताओं को समझना तथा तदनुरूप कार्यकलापों का चुनाव करना।

(3) छात्रों को अपनी भावनाओं को स्वतन्त्र रूप से अभिव्यक्त करनें की प्रेरणा देना।

(4) छात्रों की अन्तः प्रेरणा एवं इच्छा को जागृत करना।

(5) छात्र के मित्र, सहयोगी, सुधारक एवं मार्गनिर्देशक के रूप में कार्य करना।

(6) छात्रों के जीवन में अर्थपूर्ण समस्याओं को उभारना एवं उनके हल के लिए प्रेरणा व प्रोत्साहन देना।

(7) विषय के प्रस्तुतीकरण में स्पष्टता, विभिन्नता व नवीनता लाना।

(8) छात्रों को प्रश्न पूछने के लिए प्रोत्साहित करना तथा उनका यथोचित समाधान प्रस्तुत करने में छात्रों का सहयोग लेना।

यहां पर "शिक्षक " के गुणों और उसकी आचारसंहिता पर किसी शास्त्रीय व्याख्या की अपेक्षा नहीं है। आज भी समाज में अध्यापक का सर्वोपरि महत्व है। इसमें किसी संदेह की गुंजाइश नहीं है कि किसी भी शैक्षिक व्यवस्था की सफलता अध्यापकों के बौद्धिक, संशैक्षिक और मानवीय गुणों पर आधारित है। उसकी तत्परता और सजगता, उसका समर्पण, उसकी लगन और निष्ठा "शिक्षण को अधिगम बनाने की प्रक्रिया" के वे केन्द्र विन्दु हैं जिनका कोई विकल्प नहीं है। देखना है कि वह किस प्रकार शिक्षार्थी का मित्र, सहयोगी और पथप्रदर्शक बन सकता है।

3.3 शिक्षण अधिगम-नियोजन, व्यवस्था और कार्यान्वयन

(1) प्रभावी शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के विभिन्न उपागम

शिक्षण अधिगम की पर्याय बने, छात्र की सृजनात्मक क्षमता को उभार सके, उसे क्रियाशील कर दे, इसके लिए शिक्षाशास्त्री सदैव से प्रयत्नशील रहे हैं। अध्यापकों की सहायता के लिए पाठयोजना तैयार करने की पंचपद प्रणाली से हम परिचित हैं। शिक्षण सिद्धान्त के अन्तर्गत विभिन्न शिक्षण सूत्रों (Maxims of Teaching) यथा सरल से जटिल की ओर, ज्ञात से अज्ञात की ओर, स्थूल से सूक्ष्म की ओर, पूर्ण से अंश की ओर, अनिश्चित से निश्चित की ओर, प्रत्यक्ष से अप्रत्यक्ष की ओर, विशिष्ट से सामान्य की ओर, विश्लेषण से संश्लेषण की ओर आदि की स्थापना की गई। अगमन, निगमन, अन्वेषण, सुकराती, प्रयोगात्मक निरीक्षण आदि शिक्षणविधियां प्रकाश में आईं। शिक्षणविधियों का तात्पर्य अध्यापनसामग्री की उचित और क्रमबद्ध व्यवस्था से है। यह व्यवस्था प्रभावी हो, इसके लिए शिक्षक एक या अनेक शिक्षणयुक्तियों का प्रयोग करता है। प्रमुख शिक्षणयुक्तियां हैं-व्याख्या, स्पष्टीकरण, विवरण, वर्णन, कहानी, व्याख्यान आदि। इन शिक्षणयुक्तियों को और बल प्रदान करने के लिए शिक्षण-उपकरणों का सहयोग लिया जाता है। इनके अन्तर्गत उदाहरण, श्रव्य-दृश्य सामग्री, श्यामपट, पाठ्यपुस्तकें आदि आ सकती हैं।

शिक्षण सिद्धान्त वस्तुतः अधिगम प्रक्रिया के स्वरूप और अधिगम के सिद्धान्तों और नियमों पर आधारित हैं। वर्ष 1960 के बाद शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के आधुनिकीकरण के संदर्भ में विज्ञान और प्रोद्योगिकी के विकास के फलस्वरूप शिक्षण क्षेत्र भी प्रभावित हुआ और शैक्षिक तकनीकी (Educational Technology) का आविर्भाव हुआ। संक्षेप में शैक्षिक तकनीकी सीखने और सिखाने की दिशाओं में वैज्ञानिक ज्ञान का अनुप्रयोग कहा जा सकता है। इसका एक पक्ष शैक्षिक उद्देश्यों को व्यावहारिक रूप में निरूपित करता है तो दूसरा पक्ष उनकी प्राप्ति हेतु विभिन्न विधियों और प्रविधियों को जन्म देता है। सर्वप्रथम छात्र के प्रारंभिक ज्ञान (Input) का विश्लेषण कर शिक्षण अधिगम की अनुकूल परिस्थितियों का नियोजन संयोजन किया जाता है तथा तदनुकूल उपयुक्त विधि और सहायक सामग्री का चयन किया जाता है। अन्त में विद्यार्थी के अन्तिम उपलब्धि या परिवर्तित व्यवहार (output) का पता लगाया जाता है।

उपर्युक्त के अतिरिक्त शिक्षण को अधिगम के क्रम में बदलने के लिए शिक्षाशास्त्रियों ने अनेक प्रणालियों को जन्म दिया। मिलपैट्रिक की प्रोजेक्ट प्रणाली, डाल्टन की डाल्टन योजना, फ्रोबेल की किण्डर गार्डेन प्रणाली, मेरिया माटेसरी की माटेसरी प्रणाली, खेल प्रणाली, बेसिक शिक्षा या वर्धा शिक्षण पद्धति, इकाई योजना आदि से हम सामान्य रूप से परिचित हैं।

इधर के वर्षों में मनोवैज्ञानिक अध्ययनों के फलस्वरूप वैयक्तिक भिन्नता की संकल्पना प्रखर हुई और वैयक्तीकृत अधिगम (Personalised Learning) जिसमें पाठ्यचर्या, शिक्षण प्राविधि सभी में बालक के स्वतन्त्र अस्तित्व को स्वीकार करते हुए उसके पूर्णतया स्वतन्त्र अधिगम को बढ़ावा देने की बात की गई; का विस्तार हुआ। अधिगम प्रवीणता (Mastery Learning) के अन्तर्गत न्यूनतम अधिगम स्तर उपलब्धि 80 या 90 प्रतिशत हर बालक के लिए स्वीकार की गई। इसकी सम्प्राप्ति के लिए टोली कार्य, ट्यूटर की सहायता, अभिक्रमायोजित पाठ आदि के सहयोग पर बल दिया गया। कम्प्यूटर युग ने शिक्षण में कम्प्यूटर और मशीनों द्वारा शिक्षण पर बल दिया। ब्रूस, जैकी तथा मार्श (1980) जैसे विद्वानों ने कक्षा शिक्षण में सम्पोजिटरी, इन्क्वायरी और मास्टरी लर्निंग माडेल्स को प्रतिपादित किया।

उपर्युक्त के विवरण से यह स्पष्ट है कि एक लम्बे समय से शिक्षण को अधिगम में बदलने के प्रयास हो रहे हैं।

(2) समेकित शिक्षण-अधिगम उपागम:

अब प्रश्न है अच्छा शिक्षण अधिगम उपागम कौन सा है ? सही अर्थों में एक अच्छा शिक्षण अधिगम उपागम उसी को कहा जा सकता है जिससे छात्र अच्छी तरह सीखे। प्रश्न उठता है कि ज्ञान प्राप्त करने के लिए उत्सुक छात्रों को शिक्षक सारी बातें स्वयं बतला दे अथवा समस्यात्मक परिस्थिति उत्पन्न कर उसका हल ढूंढने का संपूर्ण उत्तरदायित्व उस पर (छात्र पर) डाल दे। जब शिक्षक सारी बातें स्वयं बतलाता है तो कक्षा के केवल कुछ ही छात्र मानसिक रूप से सक्रिय रहते हैं, अन्य सभी निष्क्रिय स्रोता बने रहते हैं जिसका परिणाम यह होता है कि उन्हें सारी बातें अस्पष्ट रह जाती हैं। इससे मात्र रटने को बल मिलता है। मेधावी छात्रों को भी पका पकाया ज्ञान मिल जाने के कारण विशेष प्रयास नहीं करना पड़ता जिसके कारण मेधाविक प्रस्फुटन और विकास के लिए कोई अवसर नहीं मिलता। इस उपागम को हम निदर्शन उपागम (Expository Approach) कह सकते हैं।

दूसरा उपागम अन्वेषण (Discovery) का हो सकता है जिसके समर्थकों का कहना है कि छात्र के सम्मुख मूल समस्यात्मक परिस्थितियाँ उत्पन्न की जानी चाहिए। वे उन्हें पहचानें और निरीक्षण, परीक्षण, प्रयोग, अनुभव, प्रत्यक्षीकरण द्वारा उनका हल निकालें। इस प्रकार संलिष्ट शिक्षण, अधिगम उपागम निदर्शन और अन्वेषण दोनों उपागमों के न्यायपूर्ण समन्वय पर बल देता है। अध्यापक एक निर्देशक और पथप्रदर्शक की हैसियत से उन्हें उतना बताए जितना बताना चाहिए और उसके बाद उनको स्वयं ढूंढने, सीखने और करने के लिए छोड़ दे। प्रारम्भ में भले इसमें कुछ अधिक समय लग जाय किन्तु आगे चलकर छात्रों में इतनी क्रियाशीलता और आत्मनिर्भरता उत्पन्न हो जाती है कि पूर्व क्षति की पूर्ति हो जाती है।

(3) शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया : नियोजन, संयोजन और व्यवस्था

जैसा कि ऊपर विवरण दिया गया है, किसी पाठ के शिक्षण के पहले पूर्व तैयारी आवश्यक है। पाठ के उद्देश्यों का निर्धारण, छात्र को अभिप्रेरित करने का ढंग, प्रस्तुतीकरण की विधा (शिक्षण, अधिगम, कार्यकलाप) और छात्र के पठित पाठ के मूल्यांकन के विषय में पहले संक्षेप में विचारबिन्दु निश्चित कर लिया जाना है। प्रस्तुतीकरण में छात्रों की अधिकाधिक सहभागिता पर बल देना है। पाठ समाप्त

होने के बाद अध्यापक का कार्य यह भी है कि वह छात्रों के मूल्यांकन के आधार पर यह देखे कि उसका शिक्षण कहाँ तक सफल रहा है। अर्थात् किस सीमा तक अधिगम में परिवर्तित हुआ है। इस पश्चपोषण (Feedback) से उसे अपनी शिक्षण प्रणाली को प्रभावी बनाने में सहायता मिल सकेगी। प्रश्न पूछते समय कक्षा के सभी छात्रों पर समान रूप से प्रश्नों का वितरण करना, उत्तर देने के लिए उन्हें प्रोत्साहित करना तथा अभिव्यक्ति का अवसर प्रदान करना आदि आवश्यक तत्व हैं जिन पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

कहा गया है कि एक अच्छे शिक्षण में निदान और उपचार (Diagnosis & Remedy) के तत्व होने चाहिए। छात्रों की प्रतिभागिता के आधार पर कक्षा के शैक्षिक दृष्टि से कमजोर और अपेक्षाकृत प्रतिभाशाली बच्चों की पहचान भी अध्यापक के लिए आवश्यक है। पिछड़े हुए छात्रों को उपचारात्मक शिक्षण (Remedial Teaching) और अच्छे छात्रों के लिए अभिवृद्धि कार्यक्रम (Enrichment Programme) की व्यवस्था भी शिक्षण प्रक्रिया के अंग हैं। कक्षा कार्य और गृह कार्य देना आवश्यक है और उससे भी आवश्यक उनका संशोधन करना है।

आज की परिस्थितियों को देखते हुए शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को गतिशील बनाने की दृष्टि से छात्रों में परस्पर सहयोग सहकार की भावना उत्पन्न करना आवश्यक है। छात्रों की बढ़ती हुई संख्या को देखते हुए उनमें शैक्षिक सहयोग बढ़ाने की आवश्यकता है, ताकि वे परस्पर एक दूसरे की सहायता करें, तथा एक दूसरे के कृतकार्यों का संशोधन करें। इसी उद्देश्य से परिशिष्ट में कतिपय कार्ययोजनाएं दी गई हैं।

मूल्यांकन

4.0 शैक्षिक मूल्यांकन की संकल्पना

"शिक्षण को अधिगम कैसे बनाएं" के परिप्रेक्ष्य में शैक्षिक मूल्यांकन पर भी संक्षेप में विचार करना आवश्यक है। शिक्षण हो रहा है, वह अधिगम में परिवर्तित हो रहा है इसे कैसे जाना जाय? छात्र ने कितना सीखा है, इसका निर्णय करना ही मूल्यांकन है। राइटस्टोन ने अपनी पुस्तक "इवेलुएशन इन मार्डन एजूकेशन" में शैक्षिक मूल्यांकन की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि यह एक नया तकनीकी शब्द है जो रूढ़िगत परीक्षाओं से अधिक व्यापक अर्थ में प्रयुक्त होता है। मापन में विषय वस्तु की उपलब्धि अथवा विशिष्ट कौशलों तथा योग्यताओं के किसी एक पक्ष पर बल दिया जाता है किन्तु मूल्यांकन में सम्पूर्ण व्यक्तित्व के परिवर्तन और शैक्षिक क्रिया कलापों के सभी प्रमुख उद्देश्यों पर बल दिया जाता है। इन उद्देश्यों में विषयवस्तु की उपलब्धि ही नहीं अपितु अभिवृत्तियों, रुचियों, आदर्शों, चिन्तन-विधियों, कार्य करने की आदतों तथा व्यक्तिगत और सामाजिक आवश्यकताओं का समावेश होता है।

इस परिभाषा से स्पष्ट है कि मूल्यांकन में छात्र के व्यवहार परिवर्तन के सभी साक्ष्यों को संगृहीत करने की दृष्टि से सभी साधनों यथा परीक्षण, प्रेक्षण आत्मप्रतिवेदन आदि पर बल दिया जाता है। यह छात्र के विकास से सम्बन्धित होता है। इसमें छात्र का समग्र व्यक्तित्व और विकास समाहित है। इस प्रकार मूल्यांकन की प्रक्रिया में छात्र, अभिभावक तथा अध्यापक सभी का सहयोग अपेक्षित है। इसमें छात्र के व्यवहार के गुणात्मक और परिमाणात्मक दोनों पहलू शामिल होते हैं।

4.1 शैक्षिक मूल्यांकन का क्षेत्र

जैसा कि मूल्यांकन की संकल्पना से स्पष्ट है, मूल्यांकन का क्षेत्र पूरा व्यक्तित्व है। इसके पूर्व शिक्षण उद्देश्यों के निर्धारण में विभिन्न पक्षों संज्ञानात्मक, भावात्मक और मनः कायिक की चर्चा की जा चुकी है। वस्तुतः ये व्यक्तित्व के ही तीन पक्ष हैं अतएव जिन उद्देश्यों को ध्यान में रखकर शिक्षण किया गया है, मूल्यांकन भी उन्हीं का होना है।

संज्ञानात्मक क्षेत्र की योग्यताओं का मूल्यांकन लिखित तथा मौखिक परीक्षाओं से बहुत अंशों तक संभव है। मनः कायिक क्षेत्र का मूल्यांकन भी कार्य के प्रेक्षण तथा इसमें दक्षता प्रदर्शन आदि के मूल्यांकन से कर लिया जाता है। भावात्मक क्षेत्र की उपलब्धियों का मूल्यांकन अपेक्षाकृत कठिन है। इसके मूल्यांकन के लिए प्रेक्षण तकनीकों, जांच सूचियों, निर्धारण मापिनियों, अन्वेषिकाओं तथा अनेक मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की सहायता ली जाती है फिर भी इनके वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन मे कठिनाई होती है।

4.2 वाह्य तथा आंतरिक मूल्यांकन

पहले उल्लेख किया गया है कि मूल्यांकन का क्षेत्र व्यापक है। शिक्षा आयोग की रिपोर्ट (1964-66) में उल्लेख किया गया है कि मूल्यांकन एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। आवश्यकता इस बात की है कि बालक की अयोग्यताओं के स्थान पर उसकी योग्यताओं तथा अभिरुचियों का पता लगाया जाय जिनके आधार पर बालक को उपयुक्त शैक्षिक तथा व्यावसायिक निर्देशन प्रदान किया जा सके। राष्ट्र के संतुलित विकास के लिए वैज्ञानिकों की आवश्यकता है, वहीं पर संगीत, कला, शारीरिक शिक्षा, खेलकूद आदि क्षेत्रों में रुचि रखने वाले प्रतिभावान व्यक्तियों की भी जरूरत है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में भी मूल्यांकन प्रक्रिया और परीक्षा सुधार के सम्बन्ध में कहा गया है कि विद्यार्थियों के कार्य का मूल्यांकन सीखने और सिखाने की प्रक्रिया का अभिन्न अंग है। एक अच्छी शैक्षिक नीति के अंग के रूप में शिक्षा में गुणात्मक सुधार के लिए परीक्षाओं का उपयोग होना चाहिए।

निश्चय ही व्यक्तित्व के समग्र मूल्यांकन की दृष्टि से वाह्य तथा आन्तरिक दोनों प्रकार के मूल्यांकन पर ध्यान देना होगा। जो मूल्यांकन पाठ्यक्रम की समाप्ति के पश्चात् वाह्य अभिकरण द्वारा सम्पादित होता है और जिसमें उत्तर पुस्तकें तथा छात्रों द्वारा वर्ष भर में किये गये प्रयोगात्मक/क्रियात्मक कार्यों का मूल्यांकन वाह्य परीक्षकों द्वारा सम्पादित होता है, उसे वाह्य मूल्यांकन की संज्ञा दी जाती है। जब मूल्यांकन विद्यालय द्वारा सम्पादित होता है तथा मूल्यांकन का सम्पूर्ण कार्य उन शिक्षकों द्वारा सम्पादित होता है जो छात्र के सम्पर्क में रहते हैं, तो इसे आन्तरिक मूल्यांकन कहते हैं। वाह्य और आन्तरिक मूल्यांकन की अपनी अपनी सीमायें हैं फिर भी आन्तरिक मूल्यांकन का क्षेत्र व्यापक है। इसमें

आन्तरिक परीक्षाएं और सभी मनोवैज्ञानिक परीक्षण आ जाते हैं। अध्यापक द्वारा प्रेक्षण से लेकर बालक की रुचि, अभिरुचि, योग्यता, व्यक्तित्व आदि सभी के निमित्त जो परीक्षण हो सकते हैं, आन्तरिक मूल्यांकन में आते हैं। कार्यानुभव और खेलकूद कार्यक्रम की व्यवस्था और मूल्यांकन में आन्तरिक मूल्याकन का ध्यान दिया गया है। इसी संदर्भ में संचयी अभिलेख रखने का प्रावधान किया गया है। शिक्षण को अधिगम 'कैसे बनाएं ? के संदर्भ में आन्तरिक मूल्यांकन का विशेष रूप से महत्व है, अतः आवश्यकता है, मासिक परीक्षाओं के आयोजन और छात्रों को प्रदत्त कार्य के संशोधन को प्रभावी बनाने की, इनके विषय में कतिपय विद्यालयों द्वारा कार्ययोजनाओं को प्रयोग रूप में लिया जाना अपेक्षित है।

परिशिष्ट

कतिपय कार्य योजनायें

छात्र को जिज्ञासु और क्रियाशील बनाये रखने, उसकी सृजनात्मक क्षमता की भरपूर उभारने के लिए आवश्यक है कि शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में छात्र की सहभागिता हो। अध्यापक, प्रेरणास्रोत के रूप में कार्य करते हुए विद्यालय और कक्षा की गतिविधियों का संचालन इस प्रकार से करें जिससे छात्र अधिक से अधिक सीख कर अपने जीवन में ऐसे गुणों व मानवमूल्यों का विकास करें कि वे सच्चे अर्थों में मानव कहला सकें, तभी विद्यालय शिक्षा के मंदिर और मानव निर्माण की कार्यशाला बन सकेंगे।

उपर्युक्त के संदर्भ में ही शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को गतिशील करने के लिए कुछ व्यावहारिक कार्य योजनाएं प्रस्तुत हैं। ये योजनाएं प्रयोग रूप में विद्यालयों द्वारा ली जानी चाहिए।

कार्य योजना निर्माण के पद

कार्य योजना निर्माण के पद निम्नवत् रखे गये हैं—

(1) पृष्ठभूमि (2) कार्यविधि (3) अध्यापक की भूमिका और (4) अपेक्षित संप्राप्ति।

पृष्ठभूमि:

इसमें इस बात को लिखना है कि कार्य योजना की आवश्यकता क्यों है। इससे किन प्रयोजनों की पूर्ति और उद्देश्यों की सिद्धि हो सकेगी।

कार्यविधि:

इसके अन्तर्गत विद्यालय स्तर पर ली जाने वाली कार्ययोजना के सभी कार्य पदों को क्रमबद्ध और व्यवस्थित रूप में लिखा जाना अपेक्षित है।

अध्यापक की भूमिका:

योजना के क्रियान्वयन में अध्यापक द्वारा किए जाने वाले प्रयासों एवं कार्यों का उल्लेख किया जाना है।

अपेक्षित संप्राप्ति:

कार्य योजना को चलाने से क्या परिणाम मिलेंगे, इस संभावना को इसमें व्यक्त किया जाना है। अध्यापक से अपेक्षा है कि वह स्वयं ऐसी कार्य योजनाएं तैयार करें और उनको प्रयोग में लाए।

कार्य योजना संख्या 1

कार्य योजना: शिक्षण-अधिगम में छात्रों की सहभागिता (प्राइमरी स्तर)

पृष्ठभूमि :

राज्य में बहुत से विद्यालय ऐसे हैं जहाँ शिक्षकों की संख्या एक या दो है। एक या दो शिक्षकों की उपस्थिति में विद्यालय की पाँचों कक्षाओं में (कक्षा 1 से 5) शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को प्रभावपूर्ण ढंग एवं सुचारू रूप से चलाना एक दुष्कर कार्य है। इन पाँच कक्षाओं में सभी कार्यकलापों का आयोजन करना सीमित संख्या में उपलब्ध शिक्षकों के लिए कठिन है। यही कारण है कि छात्रों की विद्यालय के प्रति अरुचि होने लगती है। एक या दो शिक्षक किस प्रकार विद्यालय के समस्त शैक्षिक क्रियाकलापों का आयोजन करें यह विचारणीय है। शिक्षण को ऐसी अधिगम प्रक्रिया बनाना आवश्यक है जिससे शिक्षक अपने समस्त दायित्वों का सम्पादन कर सके और प्राप्त संसाधनों का सदुपयोग छात्र के अधिकतम लाभ के लिए करके शिक्षण को प्रभावी बना सके। इस हेतु शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में विद्यालय के विभिन्न क्रियाकलापों में छात्रों को अधिक से अधिक सहभागी बनाना आवश्यक है। इससे शिक्षक को अपने अन्य दायित्वों के निर्वाह में मदद मिल सकेगी। जब छात्र स्वयं इस प्रक्रिया में सहयोगी बनेगें तो उन्हें स्वयं करके सीखने की प्रेरणा मिलेगी। इससे अधिगम प्रक्रिया में उनकी स्वतः रुचि भी जागृत हो सकेगी।

कार्यविधि :

सभी कक्षाओं में शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को सुचारुरूप से चलाने के लिए शिक्षक को एक ऐसी समयसारणी बनानी होगी, ऐसी व्यवस्था करनी होगी कि सभी कक्षाओं में शिक्षण अधिगम प्रक्रिया चलती रहे और एक या दो की संख्या में होते हुए भी शिक्षक की उपस्थिति का आभास हर कक्षा, हर बच्चे को होता रहे। ऐसा कैसे हो सकता है ? इसके लिये शिक्षक को हर कक्षा के प्रतिभावान, परिश्रमी छात्रों की पहचान करनी होगी और उनकी सहभागिता से शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का संचालन करना होगा। मान लीजिए विद्यालय में दो अध्यापक हैं मानी हुई बात है कि कक्षा 1 से 5 तक की हर कक्षा

में एक ही समय में शिक्षक नहीं रह सकते हैं। इसलिए शिक्षक को कुछ प्रतिभाशाली बच्चों को कक्षा का मॉनीटर नियुक्त कर उनकी सहायता पर निर्भर होना पड़ेगा। मॉनीटर समय-समय पर बदलते भी रहना चाहिए ताकि अन्य बच्चों को भी अवसर मिले। मॉनीटर की अपनी भूमिका कभी शिक्षक के सहायक के रूप में, तो कभी सह शिक्षक के रूप में, तो कभी अपने सहपाठियों के मार्ग-दर्शक के रूप में होगी। लेकिन इसके साथ यह बेहद जरूरी है कि यह पूर्ण कार्ययोजना बहुत सोच विचार कर बनाई जाए और जिस कक्षा या समूह में मॉनीटर द्वारा कक्षा का संचालन हो रहा है वह अपरोक्ष रूप में शिक्षक का ही प्रतिरूप हो। जितना ही गहराई से शिक्षक अपने दायित्व को समझेगा, उसे गंभीरता से लेगा उतनी ही रुचि से उसे बच्चों की भी सहभागिता मिलेगी।

ये कार्य कई प्रकार से हो सकते हैं जैसे सुलेख, अन्त्याक्षरी, कविता पाठ, किसी समस्यात्मक प्रश्न पर बच्चों के अपने-अपने विचार, खेलों का आयोजन, सामूहिक व्यायाम इत्यादि। इन क्रियाकलापों का संचालन समय-सारणी के अनुसार करना ही उपयुक्त होगा।

शिक्षक की भूमिका:

शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में छात्रों की भूमिका तो महत्वपूर्ण है परन्तु इसके सफल संचालन में शिक्षक की भूमिका बड़ी उपयोगी है। शिक्षक को विस्तृत योजना बनाकर सम्पूर्ण प्रक्रिया को महत्व देकर स्वयं सक्रिय होना पड़ेगा। विद्यालय के प्रत्येक छात्र को अपना तर्क प्रस्तुत करने, नेतृत्व करने का पूरा-पूरा अवसर देना होगा। यदि कोई छात्र उत्तर देने अथवा अपना विचार प्रस्तुत करने में झिझकता हो तो उसे इस हेतु प्रोत्साहित करना होगा तथा शिक्षक को कक्षा नायक द्वारा संचालित गतिविधियों पर निगाह इस प्रकार रखनी होगी कि कक्षा नायक यह न समझे कि उसकी सामर्थ्य पर किसी प्रकार का अविश्वास किया जा रहा है।

अपेक्षित सम्प्राप्ति:

(1) शिक्षकों को अपने दायित्व के सफल निर्वाह में मदद मिल सकेगी।

(2) शिक्षक को अपने कार्यों के सम्पादन हेतु अतिरिक्त समय मिल सकेगा।

(3) छात्रों में झिझक दूर होगी, उनमें स्वस्थ प्रतिस्पर्धा की भावना जागृत होगी तथा उनमें नेतृत्व की क्षमता का विकास हो सकेगा।

(4) छात्रों को अपनी कमजोरियों, त्रुटियों का आभास हो सकेगा जिससे वे आगे बढ़ने के लिए प्रयत्न कर सकेंगे।

(5) अधिगम क्रिया में छात्रों की रुचि बढ़ेगी तथा छात्र शैक्षिक क्रियाकलापों में भाग लेने हेतु उत्सुक होगा।

(6) शिक्षकों की कमी होते हुए भी समस्त शैक्षिक क्रियाकलाप प्रभाव पूर्ण ढंग से सम्पादित हो सकेंगे।

कार्य योजना संख्या 2

कार्य योजना: शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में छात्रों की सहभागिता

पृष्ठभूमि :

(1) हमारे देश में जनसंख्या विस्फोट के कारण विद्यालय में प्रत्येक कक्षा में छात्र संख्या निरन्तर बढ़ रही है। छात्रों की अधिक संख्या, शिक्षक पर अधिक कार्यभार तथा अनेकानेक कारणों से शिक्षक प्रत्येक छात्र की अधिगम आवश्यकताओं पर समुचित ध्यान देने में समर्थ नहीं हो पा रहा है। अतः इस बात की आवश्यकता है कि शिक्षक का कार्यभार कम हो, साथ ही कक्षा में अधिक छात्र संख्या रहने के बावजूद अधिगम अधिक हो। वस्तुतः शिक्षक का प्रमुख दायित्व यह है कि वह अपना शिक्षण इतना जीवन्त बनाए कि उससे छात्र में जिज्ञासा की प्रवृत्ति तथा अधिक से अधिक सीखने की लालसा विकसित हो और पाठ के विकास में उसकी सक्रियता और सहभागिता अन्त तक बनी रहे। शिक्षण अधिगम- प्रक्रिया में छात्र की सहभागिता जितनी अधिक होगी अधिगम उतना ही प्रभावी एवं सुनिश्चित होगा।

(2) उपर्युक्त परिप्रेक्ष्य में छात्रों में स्वयं के प्रति विश्वास उत्पन्न करने उनकी रुचियों, अभिरुचियों और अभिवृत्तियों के अनुसार उन्हें प्रगति का अवसर प्रदान करने, छात्रों को परस्पर मित्रता, सहयोग और सहकार का आचरण करने, अध्यापक के कार्यभार को कम करके उसे सहयोग प्रदान करने तथा अधिगम में प्रवीणता लाने की दृष्टि से यह कार्य योजना प्रस्तावित है।

कार्यविधि :

(1) <u>कक्षा का विभिन्न टोलियों में विभाजन</u> :

सत्र के प्रारम्भ में पूर्व कक्षा के वार्षिक परीक्षाफल के आधार पर विद्यालय में चल रही सदन प्रणाली की भाँति कक्षा को 6 टोलियों या सदनों में बाँट लिया जाय। प्रत्येक टोली में उच्चतर, सामान्य एवं निम्नतर उपलब्धि वाले छात्र रहने चाहिए। उदाहरण के लिए यदि किसी टोली में 10 छात्र

रहते हैं तो उनमें दो उच्चतर, पाँच सामान्य तथा तीन सामान्य से कम उपलब्धि वाले छात्र रखे जा सकते हैं। इनमें से एक टोली नायक तथा एक सहटोली नायक बनाया जाना चाहिए। प्रत्येक दो माह पर यह उत्तरदायित्व बदल कर दूसरे दो छात्रों को दिया जाना उचित होगा।

(2) शिक्षण अधिगम में पारस्परिक सहभागिता :

प्रत्येक टोली या समूह कक्षा में निर्धारित स्थान पर बैठकर पठन-पाठन में अपने समूह के सदस्यों को पारस्परिक सहयोग देंगे और कृत कार्य का शिक्षक के निर्देशन में संशोधन करेंगे। टोली नायक तथा सहटोली नायक संयोजक के रूप में कार्य करेंगे।

पूर्व निर्धारित योजनानुसार जीवन्त समस्या पर दिये गये कुछ प्रश्नों के आधार पर छात्र विषयगत प्रकरण पाठ पर अपनी-अपनी टोलियों में विचारविमर्श करेंगे तथा एक दूसरे की शंकाओं एवं त्रुटियों का निवारण करने का प्रयास करेंगे। कठिन प्रश्नों अथवा स्थलों का चयन कर, विभिन्न टोली नायक परस्पर विचारविमर्श द्वारा उनका हल खोजेंगे। अब भी जो कठिनाई रह जाय उसे अध्यापक के सम्मुख प्रस्तुत करेंगे

कुछ निर्विवादित प्रश्नों केसंक्षिप्त उत्तर छात्र अभ्यासपुस्तिका में लिखेंगे और परस्पर संशोधन करेंगे।

(3) समय का आबंटन :

35 मिनट के वादन में लगभग 5 मिनट में किसी जीवन्त समस्या के माध्यम से छात्रों के सहयोग से विषयगत प्रकरण को प्रस्तुत कर, उस पर छात्रों के सामने कुछ प्रश्न या समस्या रखी जायगी। लगभग 20 मिनट छात्र विचार विमर्श करेंगे और उसे लिख लेंगे तत्पश्चात् शेष 10 मिनट में अध्यापक टोलियों से प्राप्त हल एवं उत्तरों को परिमार्जित करेगा, कठिनाइयों के निवारण में सहयोग देगा तथा अगले दिन के विषय का संकेत कर उन्हें स्वाध्याय द्वारा समझने के लिए उन्मुख करेगा।

(4) टोलियों को प्रोत्साहन और पुनर्बलन :

इस कार्य योजना में टोली या समूह इकाई के रूप में कार्य करेगी। टोलियों द्वारा प्राप्त उत्तरों की श्रेष्ठता के आधार पर प्रोत्साहन के लिए पुरस्कार प्रमाणपत्र या प्रार्थनास्थल पर घोषणा आदि की व्यवस्था की जा सकती है। पुनर्बलन हेतु मासिक व सत्रीय परीक्षाओं का आयोजन पूर्व पठित पाठ से किया जाना चाहिए। इनमें उपलब्धि के आधार पर टोलियों को प्रथम,

द्वितीय तथा तृतीय.....घोषित कर प्रोत्साहन हेतु पुरस्कार दिये जा सकते हैं।

अध्यापक की भूमिका:-

(1) इस कार्य योजना में अध्यापक की भूमिका वस्तुतः एक मित्र मार्गदर्शक और सहयोगी की होनी है।

(2) अध्यापक से यह अपेक्षा है कि वह जीवन की विभिन्न समस्याओं के माध्यम से विद्यार्थियों को विचारविमर्श करने की प्रेरणा दें और उन्हें जिज्ञासु बनाने का प्रयत्न करें।

(3) यह उपयुक्त होगा कि अध्यापक विभिन्न टोलियों की क्रियाओं और विचारों का कक्षा में घूम-घूम कर अवलोकन करता रहे और उन्हें सही उत्तर प्राप्त करने के लिए उत्प्रेरित (प्रोबिंग) करे।

(4) जिस समय छात्र समूहगत कार्य कर रहे हों उस समय अध्यापक प्रत्येक समूह में जाकर उनके विचारविमर्श को गति और दिशा देने के साथ एक दो छात्रों की लिखित उत्तरपुस्तकें लेकर देखें तथा आवश्यकतानुसार मार्गदर्शन करें।

(5) अध्यापक अगले दिन के प्रकरण के सम्बन्ध में प्रतिदिन छात्रों को संकेत करके उन्हें प्रोत्साहित करें कि वे स्वयं उसकी तैयारी करके आएं। अगले दिन प्रस्तुतीकरण के समय विभिन्न टोलियों या समूहों में से बारी-बारी से प्रत्येक टोली को पाठ प्रस्तुत करने का अवसर दिया जाय।

(6) अध्यापक प्रत्येक प्रकरण की योजना, सम्बंधित प्रश्न व समस्या का नियोजन पहले से करें ताकि उसी के अनुसार छात्र कार्य कर सके और अध्यापक उनकी सहायता कर सके।

अपेक्षित संप्राप्ति

(1) इस कार्य योजना के संचालन से छात्रों में जहाँ आत्मविश्वास, स्वावलम्बन, सहयोग, सहकार आदि गुणों का विकास होगा, वहीं उनमें समूहभावना का विकास होगा और शिक्षण अधिगम सहभागिता बढ़ेगी।

(2) इससे अध्यापक पर एक ओर तो कार्य का दबाव कम होगा, दूसरी ओर छात्रों की सम्प्राप्ति बढ़ेगी।

(3) छात्र में आत्मानुशासन का सृजन होगा जिसके फलस्वरूप विद्यालय का समग्रअनुशासन अच्छा होगा।

(4) इस कार्य योजना के क्रियान्वित करने से विद्यालय का परीक्षाफल अच्छा होगा और उत्कृटता-स्तर बढ़ेगा।

कार्य योजना संख्या 3

कार्य योजना : कक्षा शिक्षण में छात्रों की सहभागिता

पृष्ठभूमि :

कक्षा शिक्षण को एक जीवन्त प्रक्रिया बनाने के उद्देश्य से इसमें छात्रों की सहभागिता अत्यन्त आवश्यक है। दूसरी ओर प्रत्येक विषय में बढ़ते हुए पाठ्यक्रम के कारण अध्यापक द्वारा यह निर्णय लिया जाना आवश्यक है कि पाठ के कौन से भाग को वह स्वयं पढ़ाए तथा कौन से भाग को छात्रों को स्वयं सीखने के लिए उत्प्रेरित करे। इस उद्देश्य से कक्षा में पाठ की प्रस्तुति एवं विकास में छात्रों का सहयोग लिया जाना आवश्यक है।

कार्यविधि:

प्रत्येक कक्षा का सदनों में विभाजन किया जायगा, प्रत्येक कक्षा में 6 सदन होंगे। सप्ताह में 6 दिनों में बारी-बारी से एक-एक सदन शिक्षण कार्य में सहभागी बनाया जायगा। किसी विषय में अगले दिन कक्षा में जो पाठ पढ़ाया जाना है उसके सम्बन्ध में संक्षेप में 5 मिनट के अन्दर अध्यापक द्वारा एक दिन पूर्व चर्चा की जाएगी तथा सम्बन्धित सदन के दो बच्चों को उस पाठ को प्रस्तुत करने के लिए तैयार होकर आने को कहा जाएगा एवं शेष कक्षा को पाठ-सम्बन्ध में प्रश्नोत्तर के लिए तैयारी करके आने के लिए निर्देशित किया जायगा। अगले दिन कक्षा में सम्बन्धित सदन के बच्चों द्वारा सर्वप्रथम विषय की प्रस्तुति 10 मिनट की अवधि में की जायेगी। अगले 10 मिनट में बच्चों द्वारा की गई प्रस्तुति के आधार पर अन्य बच्चों द्वारा प्रश्न पूछे जायेंगे तथा सम्बन्धित सदन के बच्चों द्वारा उन प्रश्नों का उत्तर दिया जायगा। आगामी 10 मिनट में अध्यापक द्वारा पाठ के कठिन बिन्दुओं का स्पष्टीकरण किया जायेगा एवं अन्तिम 5 मिनटों में उसके द्वारा अगले दिन पढ़ाये जाने वाले पाठ के सम्बन्ध में बताया जायगा। इस बात का ध्यान रखा जायेगा कि प्रत्येक सप्ताह में प्रत्येक सदन के भिन्न-भिन्न बच्चों को प्रस्तुतीकरण का कार्य सौंपा जाय।

शिक्षक की भूमिका

शिक्षक द्वारा बच्चों को इस बात के लिए प्रोत्साहित किया जायगा कि वे विषय का प्रस्तुतीकरण किस प्रकार रोचक एवं प्रभावोत्पादक तरीकों से करें। इस प्रस्तुतिकरण में यदि उन्हें किसी सहायक सामग्री की आवश्यकता पड़ती है तो उस सम्बन्ध में भी अध्यापक द्वारा दिशा निर्देश दिया जायगा। पाठ की प्रस्तुति एवं प्रश्नोत्तर के समय शिक्षक पर्यवेक्षक के रूप में कार्य करेगा तथा जहाँ कहीं त्रुटियाँ होंगी वहाँ संशोधन करेगा एवं विषयान्तर न होने पाये इस पर नियंत्रण रखेगा। सप्ताह के अन्त में शिक्षक द्वारा यह मूल्यांकन किया जायगा कि किस सदन के बच्चों द्वारा सर्वोत्तम कार्य किया गया है। सर्वोत्तम कार्य वाले सदन को एक नीला कार्ड दिया जायगा। वर्ष भर में प्रत्येक कक्षा में सर्वाधिक नीला कार्ड प्राप्त करने वाले सदन के बच्चों को शिक्षा-प्रवीण की उपाधि दी जायेगी।

अपेक्षित सम्प्राप्ति:

शिक्षक का कार्यभार तो इस कार्यविधि से घटेगा ही साथ ही प्रत्येक छात्र में स्वयं विषय को पढ़ने एवं समझने की प्रवृत्ति बढ़ेगी। उसमें विषय के सम्बन्ध में अधिक से अधिक जानने का कौतूहल तथा विषय को रोचक ढंग से प्रस्तुत करने की क्षमता का विकास होगा। छात्रों में भावप्रकाशन की क्षमता का विकास होगा।

छात्रों द्वारा ही विषय प्रस्तुतीकरण करने से अन्य छात्रों के लिए विषय अधिक रोचक होगा। प्रश्नोत्तर की प्रक्रिया में सभी बच्चों की सहभागिता होने से बच्चे जागरूक रहेंगे तथा विषयबोध के प्रति ध्यान देंगे।

कार्य योजना संख्या 4

कार्य योजना : गृहकार्य/लिखित कार्य संशोधन की व्यवस्था

पृष्ठभूमि :

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में कुछ अपरिहार्य कारणों से कक्षाओं में विद्यार्थियों की संख्या निर्धारित मापदण्ड से अधिक है। कक्षा में विभिन्न बौद्धिक स्तर के विद्यार्थी होते हैं। अध्यापक के समक्ष ऐसी परिस्थिति एक चुनौतीपूर्ण समस्या है कि शिक्षण के परिणामस्वरूप विद्यार्थियों कि अधिगम उपलब्धि कितनी हुई, का मूल्यांकन किस प्रकार करें। इस संदर्भ में यह भी ध्यान रखना होगा की अध्यापक के कार्यभार में अप्रत्याशित रूप से वृद्धि न होने पाये और विद्यार्थियों के अधिगम का मूल्यांकन उनकी सहभागिता के आधार पर हो तथा उनमें वांछित गुणात्मक सुधार भी हो। सामान्य से कम शैक्षिक सम्प्राप्ति वाले विद्यार्थियों का मार्गदर्शन भी साथ-साथ होता रहे जिससे कि वे कक्षा के साथ अध्ययन के कार्य में पिछड़ापन न महसूस करे।

उपर्युक्त संदर्भों को ध्यान में रखकर एक कार्य योजना प्रस्तुत का जा रहा है जो कि पर्याप्त सीमा तक उपयुक्त शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को प्रभावी बनाने में सहायक सिद्ध होगी।

कार्यविधि :

औसत रूप से कक्षा में विद्यार्थियों की संख्या लगभग 60 होती है। कक्षा के समस्त विद्यार्थियों को 6 टोलियों में बांट दिया जाय तो प्रत्येक टोली में लगभग 10 विद्यार्थी होंगे। टोलियों के विभाजन में यह ध्यान दिया जाय कि उनमें मिश्रित बौद्धिक स्तर के छात्र हों। प्रत्येक टोली से एक नायक तथा एक उपनायक बारी-बारी से प्रत्येक माह चुना जाय, जो टोली के गृह कार्य/लिखित कार्य तथा अन्य शैक्षणिक कार्यों की कठिनाइयों के निवारण में सहायक हों। नायकों के चुनाव में अध्यापक इस बात का ध्यान रक्खें कि दोनों नायक एक ही बौद्धिक स्तर के न हों। अध्यापक अपनी योजना के अनुसार एक निश्चित मात्रा में शिक्षण कार्य करने के पश्चात विद्यार्थियों को अभ्यासार्थ कुछ प्रश्न दें जिससे उनकी अधिगम प्रवीणता की जांच की जा सके। यह कार्य सप्ताह में एक बार किया जाना

चाहिए। निश्चित तिथि को सभी विद्यार्थी कार्य को पूर्ण करके लायें तथा कक्षा में टोलीवार बैठें। अध्यापक के निर्देशन पर प्रत्येक टोली के नायकों की देख- रेख में विद्यार्थी अभ्यासपुस्तिका अपने से दायें--अथवा बायें बैठे विद्यार्थी को दे दें। यह क्रिया एक बार पुनः दोहरा दी जाये, तो उत्तम होगा। ऐसा करने से प्रत्येक अभ्यासपुस्तिका सम्बन्धित विद्यार्थी से पर्याप्त दूरी पर पहुंच जायेगी।

शिक्षक की भूमिका

अध्यापक के निर्देशन में एक टोली के छात्र दूसरी टोली के छात्रों से दिये गये प्रश्नों पर विचार-विमर्श करेंगे तथा अभ्यासपुस्तिका में वांछित संशोधन भी करेंगे। संशोधन करते समय टोली नायक अपनी टोली के छात्रों के कार्यों की देखरेख करेंगे तथा आवश्यकता पड़ने पर मार्गदर्शन भी करेंगे। अध्यापक एक व्यवस्थापक के रूप में पूरी कक्षा के क्रियाकलाप की देखरेख करता रहेगा। अध्यापक नियमित रूप से अपने खाली वादनों में अथवा कार्यानुभव के वादन में (यदि खाली हो) प्रत्येक टोली की अभ्यासपुस्तिका में कहीं कोई त्रुटि रह गई हो तो उसका संशोधन कर देगा। इसकी सूचना टोली का नायक देगा। टोलीनायक संबंधित संशोधनकर्ता छात्र को बता देगा। यदि कोई त्रुटि अधिकांश छात्रों द्वारा की गई है तो उसकी चर्चा एवं संशोधन शिक्षक कक्षा में करे जिससे सभी छात्र अवगत हो जांय। छात्रों की त्रुटि का निराकरण इस रूप में किया जाय कि त्रुटि करनेवाला छात्र एवं संशोधनकर्ता छात्र हीनभावना से ग्रसित न हो। उनके कार्यों की सराहना करते हुए सुझाव के रूप में संशोधन किया जाय

अपेक्षित सम्प्राप्ति:

उपर्युक्त विधि विद्यालयों की वर्तमान परिस्थितियों में एक व्यावहारिक तथा उपयोगी व्यवस्था सिद्ध होगी। विद्यार्थियों की सहभागिता के आधार पर शिक्षण अधिगम प्रवीणता की मूल्यांकन सहज ढंग से किया जा सकता है। अध्यापक के कार्यभार में अनावश्यक वृद्धि भी नहीं होगी तथा प्रत्येक विद्यार्थी अपनी शैक्षिक कमियों का निवारण इस प्रकार कर लेगा कि वह समझेगा कि इसका निराकरण उसने स्वयं कर लिया है। इससे उसमें आत्मविश्वास तथा खोजभावना की वृद्धि होगी।

कार्य योजना संख्या 5

कार्य योजना : शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में पुस्तकालय का उपयोग

पृष्ठभूमि :

कक्षा में शिक्षण के समय प्रायः यह समस्या आती है कि बच्चों को जो कुछ पढ़ाया जाता है वे उसे भलीभांति ग्रहण नहीं कर पाते हैं। बहुत परिश्रम के पश्चात भी पूरी कक्षा में बहुत कम बच्चे ऐसे होते हैं जो आत्मसात कर पढ़ाये गये अंश को मौखिक और लिखित रूप में अभिव्यक्त कर पाते हैं। बच्चों में क्रमबद्ध, स्पष्ट एवं स्तर के अनुकूल अभिव्यक्ति की क्षमता विकसित करने हेतु विद्यालय के पुस्तकालय से लाभ उठाया जा सकता है। इस कार्य योजना से पुस्तकालय की पुस्तकों का सदुपयोग भी होगा और बच्चों में स्वाध्याय के प्रति रुचि विकसित की जा सकेगी।

कार्यविधि :

बच्चों द्वारा विद्यालयी पुस्तकालय से पुस्तकें लेकर पढ़ना शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का महत्वपूर्ण अंग है। विद्यालय पुस्तकालय का उद्देश्य अधिक से अधिक विद्यार्थियों को पुस्तकें पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करना है। इसके लिए पुस्तकालीय व्यवस्था को सरल बनाना होगा। किसी ऐसी विधि को अपनाना होगा कि बच्चों को पुस्तकें उपलब्ध होती रहें तथा बच्चे पढ़ने के लिए प्रेरित भी हों। किसी एक कर्मचारी को (सहायक) पुस्तकालय प्रभारी बना देने से कार्य नहीं चलेगा, क्योंकि प्रायः देखा जाता है कि ऐसे सहायक कर्मचारी अपने पुस्तकालय प्रभारी के दायित्व का निर्वाह कुशलता से नहीं कर पाते। पुस्तकालय से पुस्तकें लेने के लिए कक्षावार समय निर्धारित करना होगा या फिर विषय अध्यापक पुस्तकें लेकर बच्चों को दें। यह कार्य बच्चों की सहायता से किया जाय। कक्षा मानीटर या किसी ऐसे छात्र/छात्रा को जिसकी पुस्तकों में रुचि हो पुस्तकालय प्रभारी बना दें। इससे वह छात्र/छात्रा थोड़ा गौरवान्वित भी अनुभव करेगी। उसी के माध्यम से बच्चों को पुस्तकें उपलब्ध कराई जा सकती हैं। पुस्तकालय प्रभारी को दो-दो माह पर बदला जाना उपयुक्त होगा, ताकि अन्य बच्चों को भी सहभागिता मिलती रहे।

बच्चे पुस्तकालय से पुस्तकें लेकर पढ़ें इसके लिए सबसे पहले उन्हें प्रेरित करना पड़ेगा। यह कार्य 'पुस्तक प्रदर्शनी' आयोजित कर किया जा सकता है जैसे गांधी प्रदर्शनी मेला, तुलसी, सूर, कबीर मेला, कविता मेला, कहानी मेला, विज्ञान मेला इत्यादि। यह प्रदर्शनी विशिष्ट अवसरों पर आयोजित की जाए और बच्चों से कहा जाए कि उनमें से जो किताबें उन्हें अच्छी लगें उनके नाम लिख लें। इस तरह से एक बौद्धिक वातावरण बनेगा, बच्चों की रुचि पुस्तकों में होगी। बच्चों से मात्र यह कह देने से कि 'पुस्तकें पढ़ो' उनकी पुस्तकों में रुचि नहीं होगी। एक लैटिन कहावत है-"शिक्षा शब्दों से मिलती है पर प्रेरणा उदाहरणों से मिलती है।" पुस्तक पढ़ने की प्रेरणा के लिए उदाहरण रखने जरूरी है।

प्रदर्शनी के अतिरिक्त समय-समय पर कक्षा में शिक्षण के समय प्रसंगानुकूल कुछ नए तथ्य, कुछ रोचक घटनाएं शिक्षक द्वारा इस प्रकार जोड़ दी जाय कि उसके आगे जानने के लिए बच्चे उत्सुक हो जाएं और इसी समय उन्हें एक दो संदर्भ पुस्तकों का नाम बता दें जहां से पूरा प्रसंग बच्चे पढ़ सकते हैं। अगर एक बार बच्चों की पुस्तकों में रुचि हो गई, कुछ और पढ़ने की प्रेरणा मिल गई तो अब आगे का सारा कार्य सरल हो जायेगा। पर इस सबके लिए शिक्षक को प्रयास करना होगा। इसके लिए अधिक कार्यभार बढ़ाने की जरूरत नहीं, बच्चों को ही सहभागी बनाकर सारी योजना क्रियान्वित की जा सकती है। प्रदर्शनियों का आयोजन विषय अध्यापक द्वारा, कक्षा मॉनीटर तथा दो अन्य सहायक छात्र/छात्राओं की सहायता से किया जा सकता है।

पुस्तकें बच्चों को उपलब्ध कराना ही पर्याप्त नहीं है। बल्कि पढ़ी हुई पुस्तक के कुछ अंशों का पाठ, उनकी समीक्षा तथा प्रश्न-उत्तर का भी आयोजन किया जा सकता है। यह अभ्यास बच्चे कार्यानुभव के अन्तर्गत अपने-अपने समूहों में कर सकते हैं। इसी तरह से पुस्तकालय में पुस्तकें लेकर पढ़ना प्रतियोगिताओं की पूर्व तैयारी के रूप में भी किया जा सकता है।

इस प्रकार पुस्तकालय से पुस्तकें लेकर पढ़ने से बच्चे स्वाध्याय के प्रति आकर्षित होंगे, जिससे शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में बच्चों की सहभागिता बढ़ेगी तथा तर्क, चिन्तन एवं मनन का अवसर मिलेगा। बच्चे केवल सीखेंगे ही नहीं वरन् कैसे सीखें, इसे भी आत्मसात् कर सकेंगे।

पुस्तकालय के उपयोग की कार्य योजना की भांति कक्षा में बुक-बैंक तथा "कक्षा पुस्तकालय" की कार्य योजना भी संचालित की जा सकती है।

शिक्षक की भूमिका

— पुस्तकें वितरित कराने का कार्य बच्चों से कराया जाय।
— कक्षा में पढ़े अथवा लिखे गये अंश को सुनाने के लिए तथा सुझाव देने के लिए बारी-बारी से सभी बच्चों को अवसर प्रदान किये जाएं।
— सुनाये गये एवं लिखे गये कार्य में सुधार अवश्य किए जाएं।
— प्रत्येक बच्चे की उत्तरपुस्तिका को प्रति सप्ताह देखा जाएं तथा बच्चों का पढ़ने लिखने के लिए उत्साहित करें।
— समय-समय पर पुस्तकालय मेला प्रदर्शनियों का आयोजन किया जाए।

अपेक्षित सम्प्राप्ति :

बच्चों में पठन एवं लेखन के प्रति रुचि विकसित की जा सकेगी। शिक्षक भी अध्ययन के प्रति प्रेरित होंगे। बच्चों को विभिन्न प्रकार की पुस्तकों की जानकारी होगी। वे 'कैटेलाग' को देखना, उससे अपनी आवश्यकता की पुस्तकों को छांटना, उस पुस्तक को पुस्तकालय से प्राप्त करने की प्रक्रिया से परिचित होना, पुस्तक को ठीक से रखना तथा वापस करना आदि व्यावहारिक बातें सीखेंगे। बच्चों का शिक्षकों से तथा पुस्तकालयाध्यक्ष से सम्पर्क बढ़ेगा। विद्यालयी पुस्तकालय की व्यवस्था में सुधार होगा तथा बच्चे अधिक से अधिक पुस्तकों का उपयोग कर सकेंगे।

कार्य योजना संख्या 6

कार्य योजना: छात्रों के सहयोग से विद्यालय व्यवस्था का संचालन

पृष्ठभूमि:

बालक के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करने में विद्यालय का महत्वपूर्ण भूमिका है। आज का विद्यार्थी कल के नागरिक होगा। इसके लिए आवश्यक है कि उसके व्यक्तित्व में लोकतंत्रात्मक मूल्यों, नैतिक गुणों एवं दायित्व की भावना का विकास शिक्षण-प्रक्रिया के साथ ही साथ किया जाये जिससे बालक सैद्धान्तिक ज्ञान के साथ व्यावहारिक जीवन में सामंजस्य स्थापित करते हुए अधिगम को आत्मसात कर सके। उसमें प्रेम, सहयोग, सद्भाव, दया, क्षमा, सहानुभूति, सहिष्णुता, श्रम, निष्ठा, सेवा, त्याग एवं राष्ट्रीय एकता के गुणों का विकास हो सके। वह विद्यालय तथा समाज में अपने उत्तरदायित्व का पूर्ण निर्वाह कर सके तथा विद्यालय व्यवस्था के संचालन में योगदान दे सके।

कार्यविधि:

प्रत्येक सत्र के प्रारम्भ में अधिकांश प्रवेश हो जाने के पश्चात् शिक्षक कुछ उत्तरदायी छात्रों की सहायता से विद्यालय के छात्रों को 4-6 सदनों में विभाजित करेंगे (सदनों की संख्या विद्यालय की पंजीकृत संख्या पर निर्भर करेगी)। इन सदनों के नाम वीरों, महापुरुषों अथवा साहित्यकारों के नाम पर रक्खे जा सकते हैं। इन सदनों में प्रत्येक कक्षा के छात्र लगभग बराबर संख्या में रहेंगे। इसके लिए प्रत्येक कक्षा के छात्रों को 4-6 (सदनों की संख्यानुसार) समूहों में बांटा जायेगा। नये प्रवेश पाने वाले छात्रों को भी सदन-सदस्यता प्रदान करते समय सदनों के अनुसार ही विभाजित किया जायेगा। प्रत्येक सदन अपने नायक के निर्देशानुसार विद्यालय की सम्पूर्ण व्यवस्था को सुचारु एवं उत्तम ढंग से संचालन करने में अपना उत्तरदायित्व निभाएगा। सदन का नायक व्यवस्था के सम्बन्ध में सम्बन्धित शिक्षक के परामर्श के अनुसार कार्य करेगा। विद्यालय व्यवस्था के संचालन में निम्नलिखित बातों को ध्यान में रक्खा जायेगा

1. अनुशासन व्यवस्था,

2 स्वच्छता एवं स्वास्थ्य व्यवस्था

3 खेलकूद एवं व्यायाम की व्यवस्था

4 सांस्कृतिक कार्यक्रम

(लोक गीत, लोक नृत्य, भावगीत, एकांकी नाटक, प्रहसन, अन्त्याक्षरी, वाद-विवाद प्रतियोगिता आदि)

5. जलपान व्यवस्था

इसके अतिरिक्त कुछ ऐसी व्यवस्थाएं हैं जिनको सभी सदन सम्मिलित रूप से संचालित करेंगे जैसे : रेडक्रास/स्काउट/गाइड

बच्चों को यह दायित्व भी दिया जाए कि शिक्षकों के प्रबंध वाले कालांशों में कक्षा मानीटर, सह मानीटर, समयसारणी के अनुसार शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में अपने सहपाठियों की सहायता करेंगे। विलंब से आने वाले बच्चों की समस्याओं को समझने एवं उसके निदान का प्रयास करेंगे। विद्यालय के उत्सवों में कार्यक्रमों का आयोजन एवं संचालन करेंगे। प्रत्येक सदन बारी-बारी से इस दायित्व का निर्वाह करेंगे।

व्यक्तिगत एवं पर्यावरणीय स्वास्थ्य व्यवस्था के अन्तर्गत कक्षा की स्वच्छता, विद्यालय परिसर की स्वच्छता इत्यादि है। इसके अतिरिक्त सदन का नायक अपने सहपाठियों को बाल, दांत तथा नाखूनों की सफाई के लिए भी प्रेरित करेगा। सदन के छात्रों की सामान्य स्वास्थ्य की देखभाल भी शिक्षक, नायक/सहनायक की सहायता से की जाएगी। सदन को प्राथमिक चिकित्सा, रोगी की देखभाल की जानकारी इत्यादि स्काउट/गाइड और रेडक्रास के माध्यम से दी जाएगी। शिक्षकों की सहायता से छात्र प्राथमिक उपचार से सम्बन्धित कुछ औषधियों, पट्टियां इत्यादि "प्राथमिक उपचार बाक्स" में रखेंगे तथा आवश्यकता पड़ने पर शिक्षक के निर्देशन में उपचार की व्यवस्था करेंगे। यह कार्य भी प्रत्येक सदन बारी-बारी से करेगा।

विद्यालय के समय-समय पर होने वाले सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन एवं तैयारी सभी सदनों द्वारा की जाएगी किन्तु कार्यक्रमों का चयन करते समय कला तथा संगीत अध्यापक/अध्यापिका तथा अन्य दो शिक्षकों की राय अवश्य ली जाएगी। ये चार शिक्षक सदन के नेतृत्व के लिये उत्तरदायी शिक्षक के अतिरिक्त होंगे। प्रत्येक बालक में कोई न कोई प्रतिभा निहित होती है, यह मानकर प्रत्येक सदस्य की प्रतिभा को अभिव्यक्ति का अवसर दिया जायेगा तथा उसके प्रयास को प्रोत्साहित किया जाएगा। सांस्कृतिक कार्यक्रमों के अन्तर्गत नाटक (जो यथासम्भव

नैतिक शिक्षा पाठ्यपुस्तक में दी हुई कहानियों पर आधारित हो), प्रहसन, भावगीत, समूहगान, वादन (बांसुरी आदि), नृत्य, मोनोएक्टिंग, अन्त्याक्षरी, वाद विवाद प्रतियोगिता, एक्स्टेम्पोर कविता पाठ,लघु कहानी लिखना तथा सुनाना आदि क्रियाकलाप किये जायेंगे। किसी भी पर्व या कार्यक्रम के अवसर पर सफाई करवाना, बैठने की व्यवस्था कराना, शांति बनाये रखना, सजावट,स्टेज सेटिंग इत्यादि सभी कार्य सदन द्वारा किये जाएंगे।

व्यायाम, खेलकूद तथा समय-समय पर होने वाली प्रतियोगताओं का आयोजन और तैयारी सदन करेंगे। पर्यवेक्षण तथा खेलकूद से सम्बन्धित सामग्री की व्यवस्था पी० टी० टीचर या गेम प्रभारी (इनके अभाव में सामान्य टीचर) करेंगे।

अपनी बारी में प्रत्येक सदन एक सप्ताह तक कार्य करेगा और सप्ताह के अन्तिम दिन अपने सदस्यों द्वारा उच्चकोटि के सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत करेगा। वार्षिकोत्सव एवं अन्य उत्सवों पर प्रदर्शनी हेतु कार्यक्रम इन्हीं कार्यक्रमों में से चुना जाना समीचीन होगा। वर्ष/सत्र में सर्वश्रेष्ठ कार्य करने वाले सदन को किसी राष्ट्रीय पर्व पर पुरस्कृत किया जायगा तथा सभी सदनों के पदाधिकारियों और श्रेष्ठ कार्यकर्ताओं तथा विजेताओं को उत्तम कार्य एवं सहयोग हेतु प्रमाण पत्र दिये जायेंगे।

शिक्षक की भूमिका

विद्यालय व्यवस्था के संचालन में प्रत्येक सदन का मार्गदर्शन, समस्याओं का निवारण तथा सहयोग देने के लिए प्रत्येक सदन के पर्यवेक्षक एक-एक शिक्षक होंगे, जो रचनात्मक कार्यों में विशेष रुचि रखते हों। क्रियाकलापों का चयन और सदन का पूर्ण मार्गदर्शन वही शिक्षक करेंगे। आवश्यकतानुसार वे अन्य शिक्षकों का सहयोग भी प्राप्त करेंगे।

सांस्कृतिक कार्यक्रमों, प्रतियोगिताओं तथा खेलकूद संबंधी सामग्री उपलब्ध कराने का प्रबन्ध यही शिक्षक करेंगे। प्रधानाचार्य/प्रधानाचार्या सभी सदनों के संरक्षक होंगे।

अपेक्षित सम्प्राप्ति :

इस कार्ययोजना से छात्रों में बौद्धिक, व्यावहारिक, सामाजिक विकास अपेक्षित दिशा में सहज ही हो सकेगा। प्रत्येक छात्र को अभिव्यक्ति का अवसर

मिलेगा। संवेगों का नियंत्रण, मार्गान्तीकरण भी होगा। छात्रों में लोकतंत्रात्मक मूल्यों का विकास होगा जिससे वे देश के सुयोग्य नागरिक बन सकेंगे। छात्रों में प्रेम, सद्भावना, अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह, सहयोग, करुणा, दया, ममता, राष्ट्र प्रेम की भावनाओं का विकास होगा। इन गुणों से छात्रों को चारित्रिक दृढ़ता मिलेगी, स्वयं कार्य करके सीखने और कुछ कर सकने का आनंद प्राप्त करेंगे। उनमें उत्तरदायित्व की भावना विकसित होगी। मिलजुल कर कार्य करने से उनमें सहयोग एवं विश्वबन्धुत्व की भावनाओं का विकास होगा जिससे वे समाज एवं देश के प्रति अपने दायित्व को पूर्ण रूप से निर्वाह करने में सक्षम होंगे।

कार्य योजना संख्या -7

कार्य योजना: कक्षा 10 एवं 12 के छात्रों के सहयोग से लिखित कार्य की जाँच।

पृष्ठभूमि :

विद्यालयों में कार्यानुभव एवं खेलकूद मूल्यांकन व्यवस्था लागू की गई है और इसके लिए एक जीरो वादन रखा गया है। इस वादन में कक्षा 10 एवं 12 के अतिरिक्त शेष समस्त कक्षाओं के सभी छात्र कार्यानुभव एवं खेलकूद की किसी न किसी गतिविधि में भाग लेंगे। कक्षा 10 व 12 के छात्रों को इन गतिविधियों में संलग्न नहीं किया गया है। इन छात्रों का सदुपयोग अन्य कक्षाओं के लिखित कार्य के जाँच कार्य में किया जा सकता है। कक्षा में छात्रों की बड़ी संख्या को देखते हुए शिक्षक के लिए छात्रों के लिखित कार्य की जाँच सम्भव भी नहीं हो पाती है। जीरो वादन में कक्षा 10 एवं 12 के छात्रों से क्रमशः कक्षा 9 तथा 11 के छात्रों के लिखित कार्य की जाँच करायी जायेगी।

कार्यविधि:

कक्षा 10 एवं 12 की विभिन्न छात्रों की विषय विशेष में अभिरुचि एवं योग्यता स्तर को ध्यान में रखते हुए ऐसे छात्रों का चयन किया जायगा जो लिखित कार्य की जाँच का कार्य प्रभावी रूप, से कर सकते हैं। विद्यालय की अन्य कक्षाओं की भाँति कक्षा 9 एवं कक्षा 11 के छात्र विभिन्न सदनों में विभक्त रहेंगे । इन कक्षाओं के विषय अध्यापकों द्वारा अपने-अपने विषयों में लिखित कार्य का नियोजन इस प्रकार से किया जायेगा कि छात्रों को एक विषय में सप्ताह में एक दिन लिखित कार्य करना होगा। इस प्रकार कक्षा 9 के छात्र सप्ताह में 6 दिनों में प्रत्येक दिन पृथक-पृथक विषयों में लिखित कार्य करते हुए छहों विषयों में साप्ताहिक लिखित कार्य करेंगे। कक्षा 11 के छात्रों का सप्ताह 5 दिन का होगा तथा सप्ताह के 5 दिनों में प्रत्येक दिन पृथक-पृथक विषयों में लिखित कार्य करते हुए पांचों विषयों में साप्ताहिक लिखित कार्य करेंगे। परन्तु एक दिन में पूरी कक्षा का एक ही विषय का लिखित कार्य संशोधन के लिए नहीं दिया जायेगा। लिखित कार्य के संशोधन का नियोजन सदनवार होगा। सप्ताह के प्रत्येक दिन चक्राकार रूप में दिनवार विषय बदलते रहेंगे। इस विभाजन से

Sub. National Systems Unit,
National Institute of Educational
Planning and Aministration
17-B,SriAurbindo Marg,NewDelhi-110016
DOC. No....D-4213.........
Date....6/6/88.........

लिखित कार्य की जाँच का कार्य बहुत अधिक नही होगा। उदाहरण के लिए कक्षा 9 में यदि 90 छात्र हैं तो 6 सदनों में विभाजन के आधार पर प्रत्येक सदन में 15 छात्र होंगे। प्रथम सदन के 15 छात्र सोमवार को यदि हिन्दी का लिखित कार्य करके लायेंगे एवं कक्षा 10 में हिन्दी विषय में योग्यता रखने वाले तीन छात्र हैं तो कक्षा के एक एक छात्र द्वारा 5-5 उत्तर पुस्तिकाएं एक वादन में जाँची जायेंगी। किसी भी दशा में प्रति छात्र उत्तर पुस्तिकाओं की जाँच का कार्य 7 से अधिक नही होना चाहिए।

उत्तरपुस्तिकाओं की जाँच हेतु कक्षा 9 एवं कक्षा 11 के प्रत्येक सदन के प्रभारी छात्र अपने सदन के छात्रों की उत्तर पुस्तिकाओं को एकत्र करके कक्षा 10 एवं 12 के संबन्धित छात्रों के पास उपलब्ध करायेंगे। जांच कार्य समाप्त हो जाने के बाद वे उत्तरपुस्तिकाएं वापिस प्राप्त करके अपने सदन के छात्रों को वितरित कर देंगे।

जीरो वादन में लिखित कार्य की जाँच का कार्य कक्षा 10 एवं 12 के छात्रों द्वारा स्वतन्त्ररूप किया जायेगा किन्तु जाँच आरम्भ करने से पूर्व तथा समाप्त करने के बाद संबन्धित विषय अध्यापक का निर्देशन कार्य, संबन्धित विषय के वादन समय में होगा। विषय अध्यापक द्वारा संबंधित प्रश्न के उत्तर में किन बिन्दुओं का समाहित होना आवश्यक है, इसका बोध कराया जायेगा। छात्र द्वारा उत्तरपुस्तिका की जाँच कर लेने के बाद विषय अध्यापक द्वारा उत्तर पुस्तिकाओं की सैम्पुल चेकिंग की जायेगी। छात्र द्वारा यदि अशुद्ध जाँच की गई है अथवा त्रुटियों को शुद्ध नही किया गया है तो विषय अध्यापक जाँच की त्रुटियों की इंगित करेंगे तथा निराकरण करायेंगे। कक्षा 9 एवं 11 के संबन्धित छात्रों के वादन में, विषय अध्यापक द्वारा उनके उत्तर की सामान्य त्रुटियों की ओर ध्यान दिलाया जायेगा।

अपेक्षित संम्प्राप्ति :

कक्षा 10 एवं 12 के छात्रों के पिछले पाठ्यक्रम की पुनरावृत्ति होगी। इसके साथ ही उनमें आत्मसम्मान एवं गौरव की भावना विकसित होगी और इससे उत्पन्न कार्यकौशल उन्हें भावी जीवन में कार्य करने के योग्य बनायेगा।

कक्षा 9 एवं कक्षा 11 के छात्रों के लिखित कार्य की निरन्तर जाँच से उनके शैक्षिक स्तर की अभिवृद्धि होगा एवं छात्रों द्वारा की जाने वाली सामान्य त्रुटियों का निराकरण होगा।

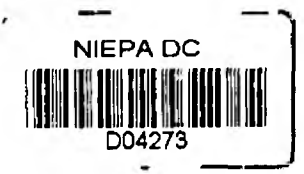
NIEPA DC
D04273